सिरिकुंदकुंदाइरियविरइय-अट्ठपाहडे

(श्रीकुन्दकुन्दाचार्य विरचित अष्टपाहुडगत)

सुत्तपाहुडं

(सूत्रपाहुड)

पाइयभासाए 'णंदिणीटीगा'

(हिंदीअणुवादसहिदा)

मुनि प्रणम्यसागर

प्रकाशक

आचार्य अकलंकदेव जैनविद्या शोधालय समिति

उज्जैन (म.प्र.)

- कृति : **सुत्तपाहुडं/सुत्रपाहुड**
- आशीर्वाद/पद्यानुवाद : **आचार्य श्री 108 विद्यासागरजी महाराज**
- प्राकृत 'नंदिनीटीका' एवं हिन्दी अनुवाद : **मुनि श्री 108 प्रणम्यसागरजी महाराज**
- संस्करण : प्रथम, नवम्बर 2019
- आइएसबीएन : 978-81-943934-0-5
- आवृत्ति : 1100 प्रतियाँ
- पुण्यार्जक : **विकास जैन, अंशु जैन, तनिष्क जैन और अर्हं जैन**
  जाग्रति एन्कलेव, दिल्ली।
- मूल्य : 90/- रुपये
- प्रकाशक : आचार्य अकलंकदेव जैनविद्या शोधालय समिति
  109, शिवाजी पार्क देवास रोड़, उज्जैन,
  फोन: 2519071, 2518396
  email: sss.crop@yahoo.com
- प्राप्ति स्थान : आर्हत विद्याप्रकाशन
  गोटेगाँव, नरसिंहपुर (म.प्र.)
  मोबा.: 09425837476

  शैलेन्द्र शाह, उज्जैन
  09425092483, 09406881001
- मुद्रक : आरसी प्रैस #9871196002

Ācārya Kundakunda's

Suttapāhuḍam

(Sutrapāhuḍa)

from

Ācārya Kundakunda's Aṣṭapāhuḍa

With commentary in Prakrit

– Ṇandiṇīṭīgā

and translation in Hindi
by

Muni Pranamyasagar

Publisher
Acharya Aklankdev Jainvidya Shodhalay Samiti
Ujjain (M.P.)

- Book : **Suttapāhuḍam/Sutrapāhuḍa**
- Blessing/Paddyanuvad : **Acharyashri 108 Vidyasagarji Maharaj**
- Prakrit Nandnitiga and Hindi Translation : **Munishri 108 Pranamyasagarji Maharaj**
- Edition : First, November 2019
- ISBN : 978-81-943934-0-5
- Copy : 1100
- Donner : Vikas Jain, Anshu Jain, Tanishq Jain and Arham Jain
  Jagriti Enclave, Delhi
- Price : ₹ 90/-
- Publisher : Acharya Aklankdev Jainvidya Shodhalay Samiti
  109, Shivaji Park, Devas Road, Ujjain (M.P.)
  Ph. : 2519071, 2518396
  email: sss.crop@yahoo.com
- Sold by : Arhat Vidhya Prakashan
  Gotegaon, Narsinghpur (M.P.)
  Ph.: 09425837476

  Shailender Shah Ujjain (M.P.)
  Ph. : 09425092483
- Printed by : Arcee Press, New Delhi #9871196002

विषयानुक्रमणिका

	गाथा नं.	पृष्ठ नं.
1. आचार्य कुन्दकुन्द का संक्षिप्त परिचय		7
2. आद्य कथन		14
3. परम पूज्य मुनि श्री प्रणम्यसागर जी द्वारा रचित ग्रन्थ-कृति परिचय		16
4. कुन्दकुन्द अष्टक		64
5. मुनिप्रणम्यसागराष्टकम्		67
6. शास्त्रस्वाध्याय का प्रारम्भिक मंगलाचरण		69
7. सूत्र क्या और उसका प्रयोजन	**1**	71
4. मोक्षमार्ग में कौन रहता है?	**2**	73
5. सूत्रानुसार प्रवर्तन के गुण	**3**	75
6. पुन: उसी अर्थ का कथन	**4**	75
7. सूत्रार्थ को जानने वाला ही सम्यग्दृष्टि	**5**	76
8. सूत्र को किस प्रकार से जानें?	**6**	78
9. आगम क्रिया से विनष्ट साधु नहीं	**7**	80
10. सूत्रार्थ पद से विनष्ट संसारी है	**8**	81
11. मिथ्यात्व को कौन प्राप्त होता है	**9**	82
12. वास्तव में मोक्षमार्गी कौन?	**10**	83
13. दिगम्बरत्व की विशेषता	**11**	84
14. उत्तर गुण सहित श्रमण की प्रशंसा	**12**	85
15. वस्त्र सहित इच्छाकार के योग्य	**13**	86
16. इच्छाकार की महिमा	**14**	87
17. धर्म करते हुए भी सिद्धि क्यों नहीं?	**15**	88
18. आत्म श्रद्धान की प्रेरणा	**16**	88
19. साधु के लिए परिग्रह निषेध	**17**	90
20. तिल तुषमात्र परिग्रही निगोद का पात्र	**18**	91
21. परिग्रह ग्रहण जिनलिंग के विरुद्ध है	**19**	92
22. निर्ग्रन्थ रूप वंदनीय है	**20**	93
23. जिनलिंग के अलावा अन्य लिंग का प्ररूपण	**21**	95
24. स्त्रीलिंग का कथन	**22**	96
25. वस्त्रधारकों की मुक्ति का निषेध	**23**	97
26. स्त्री दीक्षा क्यों नहीं?	**24**	98
27. पुन: उसी अर्थ का कथन	**25**	99
28. स्त्री स्वभाव का वर्णन	**26**	100
29. सभी दु:खों की निवृत्ति	**27**	100
30. सुत्रपाहुड - संज्ञा शब्दकोष		103
42. सूत्र-प्राभृत		114
43. गाथाओं का मूल पाठ		117
44. प्राकृत नन्दिनी टीका में प्रयुक्त सन्दर्भ ग्रन्थ सूची		120

प्राकृत जैन विद्या पाठशाला समिति (रजि॰)

रेवाड़ी (हरियाणा)

परिचय

संत शिरोमणि आचार्यश्री 108 विद्यासागर जी महाराज के आज्ञानुवर्ती शिष्य मुनिश्री 108 प्रणम्यसागर जी महाराज द्वारा रेवाड़ी में 20वाँ वर्षायोग 2017 के समय 'पाइय सिक्खा भाग-1 से 4' पुस्तकों की रचना की गई है। इन पुस्तकों की रचना का मूल उद्देश्य प्राकृत भाषा को सरल रूप से जन-जन तक पहुँचाना तथा प्राकृत-ज्ञानार्जन कराना है।

इन पुस्तकों के माध्यम से सामाजिक, पारिवारिक और वैयक्तिक स्तर पर प्राकृत-भाषा की रुचि जागृत कर सरल रूप से प्राकृत भाषा का ज्ञान प्रदान किया जा सके, इसी उद्देश्य को साकार रूप देने के प्रयोजन से मुनिश्री 108 प्रणम्यसागर जी महाराज के मंगल आशीर्वाद एवं प्रेरणा से दिनांक 10 नवम्बर 2017 को 'प्राकृत जैन विद्या पाठशाला' का शुभारम्भ 'श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र' नसियाँ जी, रेवाड़ी में मुनिश्री चन्द्रसागर जी के सन्निध्य में किया गया। मुनिश्री 108 प्रणम्यसागर जी महाराज के आशीर्वाद एवं प्रेरणा से 'प्राकृत जैन विद्या पाठशाला समिति', को हरियाणा सरकार द्वारा दिनांक 11 मई 2018 को रजिस्ट्रेशन भी प्राप्त हो गया है। जिसका विमोचन दि॰ 13 मई 2018 को कृष्णनगर दिल्ली में आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज के समाधि महोत्सव के शुभ अवसर पर मुनिद्वय के सन्निध्य में सम्पन्न हुआ। इस समिति का मुख्य उद्देश्य प्राचीन जैनाचार्यों की प्राचीन प्राकृत रचनाओं का प्रचार-प्रसार करना तथा सभी को प्राकृत पाठशाला से जोड़कर सरल, रोचक एवं सुव्यवस्थित रीति से प्राकृत का ज्ञान अर्जन कराना है।

यदि आप सामाजिक या विद्यालय स्तर पर मन्दिर या विद्यालय में 'प्राकृत विद्या' पढ़ना एवं पढ़ाना चाहें तो प्राकृत विद्या पाठशाला या प्राकृत पाठ्यक्रम से जुड़ने के लिए आप हमारी- website www.pranamyasagar.in पर online Registration कर सकते हैं तथा अन्य जानकारियों हेतु निम्नलिखित माध्यम से सम्पर्क कर सकते हैं।

प्राकृत जैन विद्या पाठशाला समिति (रजि॰) (रजिस्ट्रेशन संख्या : 01090)
नसियाँ मन्दिर, सरकुलर रोड, रेवाड़ी (हरियाणा)
मो:-94164-26659, 97846-01548, 97293-12152
Website - www.pranamyasagar.in • e-mail—prakratvidya pathshala @gmail.com

आचार्य कुन्दकुन्द का संक्षिप्त परिचय

पं. पन्नालाल शास्त्री, साहित्याचार्य-सागर

कुन्दकुन्दाचार्य और उनका प्रभाव

दिगम्बर जैनाचार्यों में कुन्दकुन्द का नाम सर्वोपरि है। मूर्तिलेखों, शिलालेखों, ग्रन्थप्रशस्तिलेखों एवं पूर्वाचार्यों के संस्मरणों में कुन्दकुन्द स्वामी का नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लिया जाता है।

मङ्गलं भगवान्वीरो मङ्गलं गौतमो गणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम्॥

इस मङ्गल पद्य के द्वारा भगवान् महावीर और उनके प्रधान गणधर गौतम के बाद कुन्दकुन्द स्वामी को मङ्गल कहा गया है। इनकी प्रशस्ति में कविवर वृन्दावन का निम्नांकित सवैया अत्यन्त प्रसिद्ध है, जिसमें बतलाया गया है कि मुनीन्द्र कुन्दकुन्द सा आचार्य न हुआ है, और न होगा–

जासके मुखारविन्दतैं प्रकाश भासवृन्द
स्याद्वाद जैन बैन इंद्र कुन्दकुन्द से
तासके अभ्यास तैं विकास भेद ज्ञान होत
मूढ़ सो लखे नहीं कुबुद्धि कुन्दकुन्द से।
देत हैं असीस शीस नाय इन्द चंद जाहि
मोह मार खंड मारतंड कुन्दकुन्द से
विशुद्धि बुद्धि वृद्धिदा प्रसिद्ध ऋद्धि सिद्धिदा
हुए, न हैं, न होंहिंगे मुनिंद कुन्दकुन्द से॥

श्रीकुन्दकुन्द स्वामी के इस जयघोष का कारण है उनके द्वारा प्रतिपादित वस्तुतत्त्व का, विशेषतया आत्मतत्त्व का विशद वर्णन। समयसार आदि ग्रन्थों में उन्होंने पर से भिन्न तथा

स्वकीय गुण पर्यायों से अभिन्न आत्मा का जो वर्णन किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने इन ग्रंथों में अध्यात्मधारारूप जिस मन्दाकिनी को प्रवाहित किया है उसके शीतल एवं पावन प्रवाह में अवगाहन कर भवभ्रमणश्रान्त पुरुष शाश्वत शान्ति को प्राप्त करते हैं।

कुन्दकुन्दाचार्य का विदेह गमन

श्री कुन्दकुन्दाचार्य के विषय में यह मान्यता प्रचलित है कि वे विदेह क्षेत्र गये थे और सीमंधर स्वामी की दिव्यध्वनि से उन्होंने आत्मतत्त्व का स्वरूप प्राप्त किया था। विदेह गमन का सर्वप्रथम उल्लेख करने वाले आचार्य देवसेन (वि० सं० दशवीं शती) हैं। जैसा कि उनके दर्शनसार से प्रकट है–

जइ पउमणंदिणाहो सीमंधरसामिदिव्वणाणेण।
ण विबोहइ तो समणा कह सुमग्गं पयाणंति।।४३।।

इसमें कहा गया है कि यदि पद्मनन्दिनाथ, सीमंधर स्वामी द्वारा प्राप्त दिव्य ज्ञान से बोध न देते तो श्रमण–मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते?

देवसेन के बाद ईसा की बारहवीं शताब्दी के विद्वान् जयसेनाचार्य ने भी पञ्चास्तिकाय की टीका के आरम्भ में निम्नलिखित अवतरण पुष्पिका में कुन्दकुन्द स्वामी के विदेह गमन की चर्चा की है–"अथ श्री कुमारनन्दिसिद्धान्तदेवशिष्यैः प्रसिद्धकथान्यायेन पूर्वविदेहं गत्वा वीतरागसर्वज्ञ श्रीमंधरस्वामितीर्थंकरपरमदेवं दृष्ट्वा तन्मुखकमलविनिर्गतदिव्यवाणी-श्रवणावधारितपदार्थाच्छुद्धात्मतत्त्वादिसारार्थं गृहीत्वा पुनरप्यागतैः श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यदवैः पद्मनन्द्याद्यपराभिधेयैरन्तस्तत्त्वबहिस्तत्त्वगौणमुख्यप्रतिपत्त्यर्थं अथवा शिवकुमारमहा-राजादिसंक्षेपरुचिशिष्यप्रतिबोधनार्थं विरचिते पञ्चास्तिकायप्राभृतशास्त्रे यथाक्रमेणाधिकारशुद्धिपूर्वकं तात्पर्य-व्याख्यानं कथ्यते।"

'जो कुमारनन्दि सिद्धान्तदेव के शिष्य थे, प्रसिद्ध कथा के अनुसार पूर्वविदेह क्षेत्र जाकर वीतराग सर्वज्ञ श्रीमंधरस्वामी तीर्थंकर परमदेव के दर्शन कर तथा उनके मुखकमल से विनिर्गत दिव्य ध्वनि के श्रवण से अवधारित पदार्थों से शुद्ध आत्मतत्त्व आदि सारभूत अर्थ को ग्रहण कर जो पुनः वापिस आये थे तथा पद्मनन्दी आदि जिनके दूसरे नाम थे, ऐसे श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव के द्वारा अन्तस्तत्त्व की मुख्य रूप से और बहिस्तत्त्व की गौणरूप से प्रतिपत्ति कराने के लिए अथवा शिवकुमार महाराज आदि संक्षेप रुचिवाले शिष्यों को समझाने के लिए पञ्चास्तिकाय प्राभृत शास्त्र रचना गया।'

षट्प्राभृत के संस्कृतटीकाकार श्रीश्रुतसागरसूरि ने अपनी टीका के अन्त में भी कुन्दकुन्द स्वामी के विदेहगमन का उललेख किया है–

'श्रीमत्पद्मनन्दिकुन्दकुन्दाचार्यवक्रग्रीवाचार्येलाचार्य–गृध्रपिच्छाचार्यनामपञ्चकविराजितेन चतुरङ्गलाकाशगमनर्द्धिना पूर्वविदेहपुण्डरीकिणीनगरवन्दितश्रीमंधरापरनामस्वयंप्रभजिनेन तत्प्राप्तश्रुतज्ञानसम्बोधित-भारतवर्षभव्यजीवेन श्रीजिनचन्द्रसूरिभट्टारकपट्टाभरणभूतेन कलिकालसर्वज्ञेन विरचिते षट्प्राभृतगंथे'–

'पद्मनन्दी, कुन्दकुन्दाचार्य, वकग्रीवाचार्य, एलाचार्य और गृध्रपिच्छाचार्य, इन पाँच नामों से जो युक्त थे, चार अंगुल ऊपर आकाश गमन की ऋद्धि जिन्हें प्राप्त थी, पूर्वविदेह क्षेत्र के पुण्डरीककिणी नगर में जाकर श्रीमंधर अपरनाम स्वयंप्रभ जिनेन्द्र की जिन्होंने वन्दना की थी, उनसे प्राप्त श्रुतज्ञान के द्वारा जिन्होंने भरतक्षेत्र के भव्य जीवों को सम्बोधित किया था, जो जिनचन्द्र सूरि भट्टारक के पट्ट के आभूषण स्वरूप थे तथा कलिकाल के सर्वज्ञ थे, ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा विरचित षट्प्राभृत ग्रंथ में।'

उपर्युक्त उल्लेखों से साक्षात् सर्वज्ञदेव की वाणी सुनने के कारण कुन्दकुन्द स्वामी की अपूर्व महिमा प्रख्यापित की गई है। किन्तु कुन्दकुन्द स्वामी के ग्रन्थों में उनके स्वमुख से कहीं विदेह गमन की चर्चा उपलब्ध नहीं होती। उन्होंने समयप्राभृत के प्रारम्भ में सिद्धों की वन्दनापूर्वक निम्न प्रतिज्ञा की है–

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गइं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुयकेवलीभणियं॥१॥

इसमें कहा गया है कि मैं श्रुतकेवली के द्वारा भणित समयप्राभृत को कहूँगा। यद्यपि 'सुयकेवलीभणियं' इस पद की टीका में श्री अमृतचन्द्र स्वामी ने कहा है– 'अनादिनिधनश्रुतप्रकाशितत्वेन, निखिलार्थसाक्षात्कारिकेवलीप्रणीतत्वेन, श्रुतकेवलिभिः स्वयमनुभवदिभ्रभिहितत्वेन च प्रमाणतामुपगतस्य।'

अर्थात् अनादिनिधन परमागम शब्दब्रह्म द्वारा प्रकाशित होने से, तथा सब पदार्थों के समूह का साक्षात् करने वाले केवली भगवान् सर्वज्ञदेव के द्वारा प्रणीत होने से और स्वयं अनुभव करने वाले श्रुतकेवलियों के द्वारा कहे जाने से जो प्रमाणता को प्राप्त है।

तो भी इस कथन से यह स्पष्ट नहीं होता कि मैंने केवली की वाणी प्रत्यक्ष सुनी है

अतः केवली इसके कर्ता हैं। यहाँ तो मूलकर्ता की अपेक्षा केवली का उल्लेख जान पड़ता है। जयसेनाचार्य ने भी केवली का साक्षात्कर्ता के रूप में कोई उल्लेख नहीं किया है। उन्होंने 'सुयकेवलीभणियं' की टीका इस प्रकार की है–'श्रुते परमागमे केवलिभिः सर्वज्ञैर्भणितं श्रुतकेवलिभणितं अथवा श्रुतकेवलिभणितं गणधरकथितमिति।'

अर्थात् श्रुत–परमागम में केवली–सर्वज्ञ भगवान् के द्वारा कहा गया। अथवा श्रुतकेवली–गणधर के द्वारा कहा गया। फिर भी देवसेन आदि के उल्लेख सर्वथा निराधार नहीं हो सकते। देवसेन ने आचार्य परम्परा से जो चर्चाएं चली आ रही थीं उन्हें दर्शनसार में निबद्ध किया है। इससे सिद्ध होता है कि कुन्दकुन्द के विदेहगमन की चर्चा दर्शनसार की रचना के पहले भी प्रचलित रही होगी।

कुन्दकुन्दाचार्य के नाम

पञ्चास्तिकाय के टीकाकार जयसेनाचार्य ने कुन्दकुन्द के पद्मनन्दी आदि अपर नामों का उल्लेख किया है। षट्प्राभृत के टीकाकार श्रुतसागरसूरि से पद्मनन्दी, कुन्दकुन्दाचार्य, वक्रग्रीवाचार्य, एलाचार्य और गृध्रपिच्छाचार्य इन पांच नामों का निर्देश किया है। नन्दिसंघ से सम्बद्ध विजयनगर के शिलालेख में भी जो लगभग १३८६ ई० का है, उक्त पांच नाम बतलाये गये हैं। नन्दिसंघ की पट्टावली में भी उपर्युक्त पांच नाम निर्दिष्ट हैं। परन्तु अन्य शिलालेखों में पद्मनन्दी और कुन्दकुन्द अथवा कोण्डकुन्द इन दो नामों का ही उल्लेख मिलता है।

कुन्दकुन्द का जन्मस्थान

इन्द्रनन्दी आचार्य ने पद्मनन्दी को कुण्डकुन्दपुर का बतलाया है। इसलिए श्रवणबेलगोला के कितने ही शिलालेखों में उनका कोण्डकुन्द नाम लिखा है। श्री पी०वी० देसाई ने 'जैनिज्म इन साउथ इंडिया' में लिखा है कि गुण्टकल रेलवे स्टेशन से दक्षिण की ओर लगभग 4 मील पर एक कोनकुण्डल नाम का स्थान है जो अनन्तपुर जिले के गुटी तालुके में स्थित है। शिलालेख में उसका प्राचीन नाम 'कोण्डकुन्दे' मिलता है। यहाँ के निवासी इसे आज भी 'कोण्डकुन्दि' कहते हैं। बहुत कुछ सम्भव है कि कुन्दकुन्दाचार्य का जन्म स्थान यही हो।

कुन्दकुन्द के गुरु

संसार से निःस्पृह वीतराग साधुओं के माता-पिता के नाम सुरक्षित रखने-लेखबद्ध करने की परम्परा प्राय: नहीं रही है। यही कारण है कि समस्त आचार्यों की माता-पिता विषयक उपलब्धि प्राय: नहीं है। हाँ, इनके गुरुओं के नाम किसी न किसी रूप में उपलब्ध होते हैं। पञ्चास्तिकाय की तात्पर्यवृत्ति में जयसेनाचार्य ने कुन्दकुन्द स्वामी के गुरु का नाम कुमारनन्दि सिद्धान्तदेव लिखा है और नन्दिसंघ की पट्टावली में उन्हें जिनचन्द्र का शिष्य बतलाया गया है। परन्तु कुन्दकुन्दाचार्य ने बोधपाहुड के अन्त में अपने गुरु के रूप में भद्रबाहु का स्मरण करते हुए अपने आपको भद्रबाहु का शिष्य बतलाया है। बोधपाहुड की गाथाएं इस प्रकार है–

सद्दविआरो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं।
सो तह कहियं णाणं सीसेण य भद्दबाहुस्स॥६१॥
बारस अंगवियाणं चउदस पुव्वंग विउलवित्थरणं।
सुयणाणि भद्दबाहू गमयगुरु भयवओ जयओ॥६२॥

प्रथम गाथा में कहा गया है कि जिनेन्द्र भगवान् महावीर ने अर्थ रूप से जो कथन किया है वह भाषा सूत्रों में शब्द विकार को प्राप्त हुआ अर्थात् अनेक प्रकार के शब्दों में ग्रन्थित किया गया है। भद्रबाहु के शिष्य ने उसे उसी रूप से जाना है और कथन किया है। द्वितीय गाथा में कहा गया है कि बारह अंगों और चौदह पूर्वों के विपुल विस्तार के वेत्ता गमक गुरु भगवान् श्रुतकेवली भद्रबाहु जयवन्त हों।

ये दोनों गाथाएं परस्पर में सम्बद्ध हैं। पहली गाथा में अपने आपको जिन भद्रबाहु का शिष्य कहा है दूसरी गाथा में इन्हीं का जयघोष किया है। यहाँ भद्रबाहु से अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु ही गाह्य जान पड़ते हैं क्योंकि द्वादश अंग और चतुर्दश पूर्वों का विपुल विस्तार उन्हीं से सम्भव था। इसका समर्थन समय-प्राभृत के पूर्वोक्त प्रतिज्ञावाक्य 'वंदित्तु सव्वसिद्धे'–से भी होता है। जिसमें उन्होंने कहा है कि मैं श्रुतकेवली के द्वारा प्रतिपादित समयप्राभृत को कहूंगा। श्रवणबेलगोला के अनेक शिलालेखों में यह उल्लेख मिलता है कि अपने शिष्य चन्द्रगुप्त के साथ भद्रबाहु यहाँ पधारे और वहीं एक गुफा में उनका स्वर्गवास हुआ। इस घटना को आज ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्वीकृत किया गया है।

अब विचारणीय बात यह रहती है कि यदि कुन्दकुन्द को अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु का साक्षात् शिष्य माना जाता है तो वे विक्रम शताब्दी से ३०० वर्ष पूर्व ठहरते हैं और उस समय जबकि ग्यारह अंग और चौदह पूर्वों के जानकार आचार्यों की परम्परा विद्यमान थी तब उनके रहते हुए कुन्दकुन्द स्वामी की इतनी प्रतिष्ठा कैसे सम्भव हो सकती है और कैसे उनका अन्वय चल सकता है? इस स्थिति में कुन्दकुन्द को उनका परम्परा शिष्य माना जा सकता है, साक्षात् नहीं। श्रुतकेवली भद्रबाहु के द्वारा उपदिष्ट तत्त्व उन्हें गुरुपरम्परा से प्राप्त रहा होगा, उसी के आधार पर उन्होंने अपने आपको भद्रबाहु का शिष्य घोषित किया है। बोधपाहुड में संस्कृत टीकाकार श्री श्रुतसागरसूरि ने भी 'भद्दबाहुसीसेण' का अर्थ विशाखाचार्य कर कुन्दकुन्द को उनका परम्परा शिष्य ही स्वीकृत किया है। श्रुतसागरसूरि की पंक्तियां निम्न प्रकार हैं–

'भद्रबाहुशिष्येण अर्हद्बलिगुप्तिगुप्तापरनामद्वयेन विशाखाचार्यनाम्ना दशपूर्वधारिणा-मेकादशाचार्याणां मध्ये प्रथमेन ज्ञातम्।'

इन पंक्तियों द्वारा कहा गया है कि यहाँ भद्रबाहु के शिष्य से विशाखाचार्य का ग्रहण है। इन विशाखाचार्य के अर्हद्बलि और गुप्तिगुप्त ये दो नाम और भी है तथा ये दशपूर्व के धारक ग्यारह आचार्यों के मध्य प्रथम आचार्य थे। भद्रबाहु अन्तिम श्रुतकेवली थे जैसा कि श्रुतसागरसूरि ने ६२वीं गाथा की टीका में कहा है–

'पञ्चानां श्रुतकेवलिनां मध्येऽन्त्यो भद्रबाहु:'

अर्थात् भद्रबाहु पांच श्रुतकेवलियों में अन्तिम श्रुतकेवली थे। अत: उनके द्वारा उपदिष्ट तत्त्व को उनके शिष्य विशाखाचार्य ने जाना। उसी की परम्परा आगे चलती रही। गमक गुरु का अर्थ श्रुतसागरसूरि ने उपाध्याय बताया है सो विशाखाचार्य के लिए यह विशेषण उचित ही है।

कुन्दकुन्द स्वामी का समय

कुन्दकुन्द स्वामी के समय निर्धारण पर 'प्रवचनसार' की प्रस्तावना में डा० ए०एन० उपाध्ये ने, 'समन्तभद्र' की प्रस्तावना में स्व० श्री जुगलकिशोर जी मुख्यतार ने, 'पञ्चास्तिकाय' की प्रस्तावना में डा० ए० चक्रवर्ती ने तथा 'कुन्दकुन्द प्राभृत संग्रह' में श्री कैलाशचन्द्र जी

शास्त्री ने विस्तार से चर्चा की है। लेख विस्तार के भय से मैं उन सब चर्चाओं के अवतरण नहीं देना चाहता। जिज्ञासु पाठकों को तत्-तत् ग्रन्थों से जानने की प्रेरणा करता हुआ कुन्दकुन्द स्वामी के समय निर्धारण के विषय में प्रचलित मात्र दो मान्यताओं का उल्लेख कर रहा हूँ। एक मान्यता प्रो० हार्नले द्वारा सम्पादित नन्दिसंघ की पट्टावलियों के आधार पर यह है कि कुन्दकुन्द विक्रम की पहली शताब्दी के विद्वान् थे। विक्रम सं० ४९ में वे आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए, ४४ वर्ष की अवस्था में उन्हें आचार्य पद मिला, ५१ वर्ष १० महीने तक वे उस पद पर प्रतिष्ठित रहे और उनकी कुल आयु ९५ वर्ष १० माह १५ दिन की थी। डा० ए० चक्रवर्ती ने पञ्चास्तिकाय की प्रस्तावना में अपना यही अभिप्राय प्रकट किया है और दूसरी मान्यता यह है कि वे विक्रम की दूसरी शताब्दी के उत्तरार्ध अथवा तीसरी शताब्दी के प्रारम्भ के विद्वान् हैं। जिसका समर्थन स्व० श्री नाथूरामजी प्रेमी तथा पं० जुगलकिशोरजी मुख्त्यार आदि विद्वान् करते आये हैं।

कुन्दकुन्द के ग्रन्थ और उनकी महत्ता

दिगम्बर जैन ग्रंथों में कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा रचित ग्रंथ अपना अलग प्रभाव रखते हैं। उनकी वर्णन शैली ही इस प्रकार की है कि पाठक उससे वस्तु स्वरूप का अनुगम बड़ी सरलता से कर लेता है। व्यर्थ के विस्तार से रहित, नपे-तुले शब्दों में किसी बात को कहना इन ग्रन्थों की विशेषता है। कुन्दकुन्द की वाणी सीधी हृदय पर असर करती है। निम्नांकित ग्रन्थ कुन्दकुन्द स्वामी के द्वारा रचित निर्विवाद रूप से माने जाते हैं तथा जैन समाज में उनका सर्वोपरि मान है। १. पञ्चास्तिकाय, २. समयसार, ३. प्रवचनसार, ४. नियमसार, ५. अष्टपाहुड (दंसणपाहुड, चरित्तपाहुड, सुत्तपाहुड, बोधपाहुड, भावपाहुड, मोक्खपाहुड, सीलपाहुड और लिङ्गपाहुड), ६. वारसणुपेक्खा और भत्तिसंगहो।

इनके सिवाय 'रयणसार' नाम का ग्रंथ भी कुन्दकुन्द स्वामी के द्वारा रचित प्रसिद्ध है परन्तु उसके अनेक पाठ भेद देखकर विद्वानों का मत है कि यह कुन्दकुन्द के द्वारा रचित नहीं है अथवा इसके अन्दर अन्य लोगों की गाथाएँ भी सम्मिलित हो गई हैं। भाण्डारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना से हमने १८२५ संवत् की लिखित हस्तलिखित प्रति बुलाकर उससे मुद्रित रयणसार की गाथाओं का मिलान किया तो बहुत अन्तर मालूम हुआ। मुद्रित प्रति में बहुत सी गाथायें छूटी हुई हैं तथा नवीन गाथाएं मुद्रित हैं। उस प्रति पर रचयिता का नाम नहीं है। उधर सूची में भी यह प्रति अज्ञात लेखक के नाम से दर्ज है। चर्चा आने पर पं० परमानन्द जी शास्त्री

ने बतलाया कि हमने ७०-८० प्रतियां देखी हैं सबका यही हाल है। मुद्रित प्रति में अपभ्रंश का एक दोहा भी शामिल हो गया है तथा कुछ इस अभिप्राय की गाथाएँ हैं जिनका कुन्दकुन्द की विचारधारा से मेल नहीं खाता। इन्द्रनन्दि के श्रुतावतार के अनुसार षट्खण्डागम के आद्य भाग पर कुन्दकुन्द स्वामी के द्वारा रचित परिकर्म ग्रंथ का उल्लेख मिलता है। इस ग्रंथ का उल्लेख षट्खडागम के विशिष्ट पुरस्कर्ता आचार्य वीरसेन ने अपनी टीका में कई जगह किया है। इससे पता चलता है कि उनके समय तक तो वह उपलब्ध रहा। परन्तु आजकल उसकी उपलब्धि नहीं है। शास्त्र भण्डारों, खासकर दक्षिण के शास्त्र भण्डारों में इसकी खोज की जानी चाहिए। मूलाचार भी कुन्दकुन्द स्वामी के द्वारा रचित माना जाने लगा है क्योंकि उसकी अन्तिम पुष्पिका में 'इति मूलाचारविवृतौ द्वादशोऽध्यायः। कुन्दकुन्दाचार्य प्रणीतमूलाचारख्यविवृतिः। कृतिरियं वसुनन्दिनः श्रमणस्य, यह उल्लेख पाया जाता है। विशेष परिज्ञान के लिए पुरातनवाक्यसूची की प्रस्तावना में स्व० पं० जुगलकिशोर जी मुख्त्यार का संदर्भ पठितव्य है। कुन्दकुन्द स्वामी के समस्त ग्रन्थों का परिचय कुन्दकुन्द भारती की प्रस्तावना में मैंने दिया है।

आद्य कथन

आचार्यों ने कहा है-'स्वाध्याय परम तप है।' अरिहन्त भगवान् द्वारा उपदेशित, गणधरों, आचार्यों, मुनिवरों द्वारा रचित सच्चे शास्त्रों का पठन-पाठन ही स्वाध्याय कहलाता है। सभी प्राणियों का मुख्य लक्ष्य है मोक्ष प्राप्त करना जो रत्नत्रय के पालन द्वारा ही सम्भव है। मोक्षमार्ग पर अग्रसर होने के लिए एक मात्र उपाय है शास्त्रों का अध्ययन एवं मनन। क्योंकि अरिहन्त भगवान् इस युग में नहीं हैं और उत्तम साधु का सर्वत्र व सदैव सानिध्य प्राप्त होना सम्भव नहीं है।

परम पूज्य मुनिश्रेष्ठ श्री प्रणम्यसागर जी ने हम सभी पर महती कृपा करते हुए बहुत से मौलिक ग्रन्थों की रचना प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी आदि भाषाओं में की है एवं बहुत से ग्रन्थों की हिन्दी टीका व पद्यानुवाद किया है। आपने अपने ग्रन्थों में सरल भाषा का प्रयोग किया है एवं अधुनातन उदाहरणों द्वारा विषयों को अत्यन्त स्पष्ट व हृदयग्राही बना दिया है। जैनागम के विविध सूत्रों को तथा सिद्धान्तिक विषयों को समझाने की आपकी शैली अद्वितीय है। एक बार प्रारम्भ करने के पश्चात् ग्रन्थ को अन्त तक पढ़े बिना उसको छोड़ने का मन ही नहीं करेगा। मुनिवर की लेखनी अनवरत चलती रहती है एवं नित्य नवीन कृतियों का सृजन भी हो रहा है। भावना भाता हूँ कि आप शतायु होवें एवं हम पर उपकार करते हुए साहित्य सृजन में नये आयाम स्थापित करें।

आप अपनी रुचि के अनुसार स्वाध्याय करने के लिए ग्रन्थ चयन कर सकें इसलिए विद्वान् लेखक सिद्धहस्त कवि मुनि श्री प्रणम्यसागर जी द्वारा प्रणीत कृतियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है। आप अधिक से अधिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करके धर्मलाभ, पुण्यलाभ अर्जन करके अपना मोक्षमार्ग प्रशस्त करें ऐसी मंगल कामना करता हूँ।

गुरु कृपाकांक्षी
अजित प्रसाद जैन

परम पूज्य मुनि श्री प्रणम्य सागर जी द्वारा रचित ग्रन्थ-एक परिचय

कृति परिचय

संस्कृत भाषा में टीका ग्रन्थ

1. लिंगपाहुड़ व शीलपाहुड़ (नन्दिनी टीका), 2. समाधितन्त्रम् (आर्हतभाष्यम्), 3. चैतन्य चन्द्रोदय (चन्द्रिका टीका), 4. वारसाणुवेक्खा (कादम्बिनी टीका), 5. आत्मानुशासन (स्वस्ति टीका), 6. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (मंगला टीका), 7. प्रश्नोत्तर रत्नमालिका (नीति पथ), 8. तत्त्वार्थसूत्र (तत्त्व संदीपनी टीका, संस्कृत-प्राकृत), 9. संस्कृत एवं प्राकृत भक्ति (आठ भक्तियों की टीका)

संस्कृत भाषा में मौलिक काव्य ग्रन्थ

1. स्तुतिपथ (इस कृति में निम्नलिखित स्तुतियाँ हैं)

   1. प्रार्थना 2. वीराष्टकम् 3. भरताष्टकम् 4. शारदाष्टकम् 5. कुन्दकुन्दाष्टकम् 6. समन्तभद्राष्टकम् 7. शान्त्यष्टकम् 8. ज्ञानाष्टकम् 9. विद्याष्टकम् 10. मौनाष्टकम् 11. निजबोधाष्टकम् 12. आचार्य श्री ज्ञानसागर प्रशस्ति पत्र 13. आचार्य श्री विद्यासागर पूजन।

2. श्रायसपथ, 3. सिद्धोदयाष्टकम्, 4. श्री वर्धमान स्तोत्र, 5. अनासक्त महायोगी (आचार्यश्री का जीवनवृत्त), 6. उपयोग शतकम्, 7. अर्हं अष्टांगयोग शतकम्, 8. स्तुति शतकम् (आचार्य श्री शान्तिसागर जी की स्तुति), 9. श्री शान्तिनाथ स्तोत्र शतकम्।

प्राकृत भाषा में मौलिक ग्रन्थ

1. तित्थयर भावणा (सोलहकारण भावनाओं पर प्राकृत गाथाएँ एवं विवरण), 2. दार्शनिक प्रतिक्रमण, 3. अष्टपाहुड (प्राकृत टीका, 1-6), 4. धम्मकहा, 5. प्राकृत रचना भास्कर एवं प्राकृत शाब्दकोश, 6. प्राकृत शिक्षा भाग-1, 2, 3, 4, 7. गोम्मटेस पडिमा भत्ति

हिन्दी में अनुवादित ग्रन्थ

1. सत्कर्म पञ्जिका, 2. दश भक्ति टीका, 3. प्रवचनसार (सरोज भास्कर टीका), 4. कथा कोश, 5. सत्यशासन परीक्षा, 6. युक्त्यनुशासन, 7. नाममाला (भाष्य),
8. सत्संख्यादि अनुयोग द्वार संस्तवनम् पुस्तक में निम्न चार स्तोत्र हैं (9-12) –

   9. अद्याष्टकस्तोत्रम्, 10. चतुर्विंशति तीर्थंकर स्तुति (आ. माघनन्दि), 11. 'संन्यास एषोऽस्तु किमात्मघात:?' पर आधरित हिन्दी टीका, 12. पात्रकेसरी स्तोत्रम्,

13. नियमसार (हिन्दी अनुवाद एवं प्रश्नोत्तर टीका), 14. समयसार, 15. परीक्षामुख, 16. प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी, 17. न्यायविनिश्चय

प्रवचन ग्रन्थ

1. वारसाणुवेक्खा, 2. नई छहढ़ाला प्रवचन, 3. परमात्म योग (समाधि तंत्र), 4. अध्यात्म योग (इष्टोपदेश), 5. जीवविज्ञान (तत्त्वार्थसूत्र के दूसरे अध्याय पर प्रवचन), 6. लोक विज्ञान (तत्त्वार्थसूत्र के तीसरे व चौथे अध्याय पर प्रवचन), 7. मनोविज्ञान (तत्त्वार्थसूत्र के छठे अध्याय पर प्रवचन), 8. व्रत विज्ञान (तत्त्वार्थसूत्र के सातवें अध्याय पर प्रवचन), 9. जिंदगी क्या है? (जुलाई 2019), 10. पंचलब्धि, 11. प्रवचनसार का सार

अन्य मौलिक कृतियाँ

1. युगदृष्टा (भगवान ऋषभदेव पर उपन्यास), 2. जैन सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य, 3. खोजो मत पाओ (लाइफ मैनेजमेन्ट), 4. आलेख पथ (20 सैद्धान्तिक आलेख), 5. समयसार का ज्ञानी आत्मा कौन?, 6. अन्तर्गूंज (भजन व हाइकू), 7. लहर पर लहर (कविता संग्रह), 8. बेटा (शिक्षाप्रद सूक्तियाँ), 9. अर्हं कलेण्डर, 10. नई छहढ़ाला, 11. लक्ष्य (जीवन्धर चरित्र), 12. अर्हम् दोहावली, 13. मुनिसुव्रतनाथ विधान, 14. महामह नन्दीश्वर विधान

पद्यानुवाद

1. कल्याणमन्दिर स्तोत्र, 2. मंगलाष्टक, 3. माघनन्दि कृत अभिषेक पाठ, 4. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, 5. प्रश्नोत्तर रत्नमालिका, 6. श्री तत्त्वार्थसूत्र मण्डल विधान, 7. पात्रकेसरी स्तोत्र, 8. श्री वर्धमान स्तोत्र, 9. उपयोग शतकम्

अंग्रेजी भाषा में

1. Fact of Fate, 2. Twelve Comtemplation (Poem), 3. I Love my Soul (Poem).

परम पूज्य मुनि श्री प्रणम्य सागर जी द्वारा रचित ग्रन्थ

1. लिंगपाहुड़ व शीलपाहुड़ की नन्दिनी टीका-(संस्कृत टीका एवं हिन्दी अनुवाद सहित)

आचार्य कुन्दकुन्ददेव द्वारा प्राकृत भाषा में रचित लिंगपाहुड़ की प्रणम्यसागर जी ने संस्कृत भाषा में 'नन्दिनी टीका' की है। लिंग व शील पाहुड़ में विभक्त यह नन्दिनी टीका साधकों को सम्यक् दिशा में प्रेरित करती है।

लिंगपाहुड़ की 22 गाथाओं में 22 विषयों का वर्णन है। इसमें श्रमणलिंग को लक्ष्य कर मुनिधर्म का निरूपण किया गया है। श्रमण के अनेक क्रियाकलाप जो कि श्रमण के बाह्य लिंग के भी विपरीत है, उनका वर्णन है।

शीलपाहुड़ ग्रन्थ की 40 गाथाओं में शील की महिमा का प्रतिपादन है। शील अर्थात् आत्म-स्वभाव। शील ही विषयासक्ति को दूरकर मोक्षप्राप्ति में सहायक होता है। जीवदया, इन्द्रिय-दमन, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, असन्तोष, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और तप को शील के अन्तर्गत परिगणित किया गया है। नन्दिनी टीका के प्रारम्भ में कुन्दकुन्द-अष्टक आठ पद्यों में स्रग्विणी छन्द में लिखा है। लिंगपाहुड़ ग्रन्थ की प्रथम गाथा में अरिहन्त व सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार किया गया है। शीलपाहुड़ ग्रन्थ की प्रथम गाथा में भगवान् महावीर के चरणों में नमस्कार किया है। टीका के अन्त में गाथा, अनुक्रमणिका, टीकान्तर्गत सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची व टीकान्तर्गत व्याकरण-सूत्र सम्मिलित है।

इस टीका की रचना मुनिश्री ने वर्ष 2002 में नेमावर के चार्तुमास में की थी तथा इसका हिन्दी अनुवाद मनेन्द्रगढ़ प्रवास में शान्तिनाथ जिनालय में 20 जुलाई 2007 में पूर्ण किया था।

2. समाधितन्त्रम् (आर्हतभाष्यम्)

आचार्य पूज्यपाद द्वारा संस्कृत में रचित 'समाधितन्त्रम्' का दूसरा नाम समाधिशतक है। इसमें 105 पद्य में आध्यात्मविषय का बहुत ही सुन्दर विवेचन है।

कवि, वैयाकरण और दार्शनिक इन तीनों का एकत्र समवाय आचार्य पूज्यपाद में दृष्टिगोचर होता है। आचार्य पूज्यपाद का मूल नाम देवनन्दि था। बुद्धि की महत्ता के कारण जिनेन्द्रबुद्धि और देवों के द्वारा पूजित होने से ये पूज्यपाद कहलाए। उन्होंने जैनेन्द्र-व्याकरण, सर्वार्थसिद्धि, दशभक्ति, जन्माभिषेक, समाधितन्त्र, इष्टोपदेश, सिद्धप्रिय-स्तोत्र आदि ग्रन्थों की रचना की है। आचार्य पूज्यपाद ने समाधितन्त्रम् की विषयवस्तु कुन्दकुन्दाचार्य के ग्रन्थों से ही ग्रहण की और बहुत कम शब्दों और कारिकाओं में आध्यात्म का मर्म अपने ग्रन्थ में भर दिया। आचार्य पूज्यपाद देव ने तीन ग्रन्थों की रचना मन, वचन व काय के लिए की है। मन के लिए 'इष्टोपदेश', 'समाधितन्त्रम्', वचन के लिए 'जैनेन्द्र व्याकरण' एवं काय के लिए 'वैद्यक ग्रन्थ' की रचना की है।

मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने 'समाधितन्त्रम्' पर संस्कृत में 'आर्हत् भाष्य' की रचना करके हिन्दी अनुवाद किया है। आचार्यश्री विद्यासागर जी ने इसका हिन्दी पद्यानुवाद किया है। आर्हतभाष्यम् में अध्यात्म का बहुत मनोरम वर्णन है। इसका प्रतिपाद्य विषय बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा के स्वरूप का विवेचन है। बहिरात्मभाव-मिथ्यात्व का त्यागकर, अन्तरात्मा बनकर परमात्मपद की प्राप्ति के लिए प्रयास करना साधक का परम कर्त्तव्य है। आत्मा, शरीर, इन्द्रिय और कर्मसंयोग का इसमें हृदयग्राही विवेचन किया गया है।

'सर्वोदय तीर्थ क्षेत्र' में द्वितीय वर्षायोग में सन् 2003 में मुनिश्री ने संस्कृत-टीका पूर्ण की। तत्पश्चात् वर्ष 2007 कोतमा के चातुर्मास में इस भाष्य का हिन्दी अनुवाद सम्पन्न हुआ।

3. 'चैतन्य चन्द्रोदय' (चन्द्रिका टीका)

आचार्यश्री विद्यासागर जी ने प्रवचन वात्सल्य की भावना से निकट भव्यजीवों के उद्धार की इच्छा से 'चैतन्यचन्द्रोदय' काव्य को 114 उपजाति छन्द में निबद्ध किया है। ग्रन्थकार ने मंगलाचरण करके स्वरूप लाभ के लिए प्रतिज्ञा की है। उसके बाद साकार, अनाकार उपयोग का वर्णन है। ज्ञानगुण से श्रद्धा, सुख आदि गुणों की भिन्नता भिन्नकार्य के माध्यम से दिखाई है। ईश्वर-कर्तृत्व का निराकरण, उपादान-निमित्त का सम्यक् प्रयास इत्यादि विषयों का स्पष्टीकरण है। तीन उपयोगों का कथन गुणस्थान की मुख्यता से अत्यन्त स्पष्ट है। अन्त में, सिद्धों की स्तुति ग्रन्थकार की सिद्ध आत्माओं के प्रति श्रद्धा को प्रकाशित करती है। इस ग्रन्थ में प्रत्येक अनुयोग का विषय है।

परम पूज्य मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने इस ग्रन्थ पर संस्कृत में चन्द्रिका टीका लिखी है। पूज्य गुरुदेव (आचार्य श्री विद्यासागर जी) ने इस ग्रन्थ का विषय अध्ययन के समय और चर्चा के समय बहुत बार स्पष्ट किया है। श्रुतभक्ति से, गुरु की प्रीति से और प्रवचन-वात्सलता से ही मुनिश्री ने यह महान् कार्य सम्पन्न किया है।

मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने चन्द्रिकाटीका को हिन्दी अनुवाद के साथ 'प्रयाग' इलाहाबाद में 2008 में अक्षयतृतीया के दिन पूर्ण किया।

4. वारसाणुवेक्खा (कादम्बिनी टीका)

'वारसाणुवेक्खा' ग्रन्थ बारह भावनाओं की प्रमुखता से संक्लिष्ट चित्त को धर्मध्यान, शुक्लध्यानमय समाधि और निर्विकल्पता प्रदान करके आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है। इस ग्रन्थ पर आज तक कोई संस्कृत टीका उपलब्ध नहीं थी। मुनि श्री प्रणम्य सागर जी महाराज की यह 'कादम्बिनी टीका' इस ग्रन्थ की सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ टीका है। मुनिश्री ने संस्कृत टीका के अर्थ के साथ-साथ इसका विस्तृत व्याख्यान भी प्रस्तुत किया है जिससे यह ग्रन्थ भव्यजनों के लिए सर्वग्राह्य बन गया है। सर्वव्यापी बनाने के लिए मूलगाथाओं का अंग्रेजी अनुवाद भी है।

कादम्बिनी-टीका की संस्कृत प्रसादगुण-मयी और प्रवाह पूर्ण है, छोटे-छोटे वाक्यों से विषय को सहज बनाया है। इस टीका का हिन्दी अनुवाद भी सरल, सहज, सुबोधगम्य और

प्रवाहपूर्ण है। इस ग्रन्थ की अन्यतम विशेषता है कि सामान्यजन भी इसको पढ़कर इसकी विषयवस्तु को ग्रहण कर लेता है। इस टीका की रचना मुनिश्री ने कुण्डलपुर तीर्थक्षेत्र में पूर्णा तिथि वीर निर्वाण संवत् 2531 में ग्रीष्मकाल में पूर्ण की। (उज्जैन वर्षायोग-2013)

5. आत्मानुशासन (स्वस्ति टीका)

गुणभद्राचार्य जिनसेन द्वितीय के शिष्य थे। 'आत्मानुशासन' गुणभद्राचार्य का महत्त्वपूर्ण, धर्म व नीति- ग्रन्थ है। इसमें 269 पद्य हैं। आत्मा के यथार्थ स्वरूप की शिक्षा देने के लिए इसका प्रणयन किया गया है। इस पर प्रभाचन्द्राचार्य ने संस्कृत-टीका और पण्डित टोडरमल ने हिन्दी-टीका लिखी है। इसमें सुभाषितरूप में सुख-दु:ख-विवेक, सम्यग्दर्शन, दैव की प्रबलता, सत्साधु-प्रशंसा, मृत्यु की अनिवार्यता, तपाराधना, ज्ञानाराधना, स्त्रीनिन्दा, समीचीन गुरु, साधुओं की असाधुता, मनोनिग्रह, कषायविजय, यथार्थतपस्वी प्रभृति विषयों पर पद्य रचना प्रस्तुत की गयी है।

परम पूज्य मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने इस ग्रन्थ पर संस्कृत में स्वस्ति टीका लिखी है। आजकल संस्कृत में टीका लिखने का प्रचलन कम हो गया है क्योंकि पाठक विरले ही रह गये हैं। पूज्य महाराज जी ने कई ग्रन्थों की संस्कृत टीका लिखकर संस्कृत-साहित्य को समृद्ध किया है।

6. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (मंगला टीका)

आचार्य कुन्दकुन्द के व्याख्याता के रूप में और मौलिक ग्रन्थ के रचयिता के रूप में अमृतचन्द्रसूरि का महत्वपूर्ण स्थान है। यदि अमृतचन्द्रसूरि न होते तो, आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों के रहस्य को समझना कठिन हो जाता। अमृतचन्द्रसूरि की मौलिक रचनाएँ- तत्त्वार्थसार, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, समयसारकलश हैं। प्रमुख टीका कृतियों में समयसारटीका, प्रवचनसार टीका, पञ्चास्तिकाय टीका है।

आचार्य अमृतचन्द्रसूरि विरचित 'पुरुषार्थसिद्ध्युपाय' अनेक श्रावकाचारों में अनूठी कृति है। श्रावक व श्रमण का पथ प्रदर्शक इस अद्‍भुत ग्रन्थ में मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि का मार्ग निरूपित है। इसमें आत्मा की उन्नति के लिए रत्नत्रय रूपी तीन सोपान वर्णित हैं। यह सात अधिकारों में विभक्त 226 शलोकों में आर्या छन्द में निबद्ध है। इसमें रत्नत्रय, सल्लेखना एवं प्रसंगवश सकलचारित्र धर्म का वर्णन है। सकलचारित्र के व्रतों के अन्तर्गत हिंसा और अहिंसा का अत्यन्त सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है।

मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने इस कृति की संस्कृत 'मंगलाटीका' एवं दोहानुवाद किया है। प्रस्तुत टीका-कृति के पृष्ठ में अर्द्धभाग में मूल आर्या छन्द और उसकी मुनिश्री वर्णित मंगलाटीका है। शेष अर्ध भाग में इनका हिन्दी अनुवाद है जो उत्थानिका, अन्वय, अन्वयार्थ, टीकार्थ शीर्षकों में समाहित है। प्रत्येक पद्य की व्याख्या का यही क्रम है। कहीं-कहीं विशेषार्थ भी लिखा गया है। अपेक्षित शंका-समाधान टीकार्थ में ही समाहित हैं।

परिशिष्ट में व्याकरणिक सूत्र-सूची, उद्धृत सूची तथा श्लोक अनुक्रमणिका भी संकलित है। इस टीका की रचना मुनिश्री ने रामटेक (महाराष्ट्र) में वर्ष 2004 में पूर्ण की थी।

7. प्रश्नोत्तर रत्नमालिका-(नीति पथ) अप्रैल 2014

राजर्षि अमोघवर्ष मुनिराज द्वारा प्रश्नोत्तर शैली में रचित यह लघुकाय ग्रन्थ है। मात्र 29 श्लोक हैं जो आर्या छन्द में लिखें गए हैं। निबद्ध प्रश्न 63 हैं। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर साथ-ही-साथ है, इसी विधा के कारण यह ग्रन्थ सबके लिए प्रिय है। मंगलाचरण के अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं जो मात्र जैन धर्म के लिए हो। जैन-अजैन सभी के लिए व्यावहारिक जीवन में उपयोगी प्रश्न इस ग्रन्थ में हैं जो नैतिक आचरण के उत्थान के लिए दीपस्तम्भ के समान हैं। मुनिश्री ने श्लोक का अन्वयार्थ, संस्कृत टीका, विवेचन और पद्यानुवाद करके इस कृति को सर्वग्राह्य बनाने का सफल प्रयास किया है।

जिज्ञासु जन इस कृति से नीतिज्ञ बनें और नैतिक चरित्र प्राप्त होवे-इस भावना से नीतिपथ की रचना की गई है। यह कृति मुनिश्री ने नरसिंहपुर के पावन वर्षायोग में वर्ष 2010 में पूर्ण की थी।

8. तत्त्वार्थसूत्र (तत्त्व संदीपनी टीका, संस्कृत-प्राकृत)

तत्त्वार्थसूत्र आचार्य उमास्वामी द्वारा रचित संस्कृत भाषा का प्रथम ग्रन्थ है। यह दिगम्बर व श्वेताम्बर दोनों आम्नाओं में सर्वमान्य है। इस पर अनेक आचार्यों द्वारा लिखित प्रामाणिक टीकाएँ हैं, जिसमें आचार्य पूज्यपाद स्वामी जी की 'सर्वार्थसिद्धि', आचार्य अकलंकदेव जी की 'राजवार्तिक', आचार्य विद्यानन्दि जी की 'श्लोकवार्तिक' प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त, अनेक टीकाएँ, व्याख्याएँ भी संस्कृत व हिन्दी में उपलब्ध हैं।

मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने तत्त्वार्थसूत्र पर 'तत्त्व-संदीपनी टीका' की रचना प्राकृत एवं संस्कृत दोनों भाषाओं में मिश्रित रूप से की है। वर्तमान उपलब्ध साहित्य में आचार्य वीरसेन की धवला टीका में ऐसा अनुपम संयोग दोनों भाषाओं का मिलता है। धवला-टीका प्राकृत

भाषा में लिखित श्री षट्खण्डागम ग्रन्थ पर बहुत दीर्घकाय व्याख्या है। जिस प्रकार वर्तमान में उपलब्ध जैनागम में प्राकृत का प्रथम प्रामाणिक, सैद्धान्तिक ग्रन्थ श्री षट्खण्डागम है, उसी प्रकार संस्कृत भाषा में 'तत्त्वार्थसूत्र' है।

तत्त्वसंदीपनी-टीका में दस अध्याय हैं। प्रथम और द्वितीय अध्याय के सूत्रों पर संस्कृत टीका है, तृतीय से दशम अध्याय तक प्राकृत भाषा में सरल टीका है। मध्य में कहीं-कहीं पर संस्कृत में भी व्याख्या है या निर्वचन आदि के लिए संस्कृत भाषा का प्रयोग है। कहीं-कहीं सूत्रों की संस्कृत में टीका हुई है, तो कहीं प्राकृत में। भगवान् महावीर की दीर्घकालीन परम्परा में 'तत्त्वार्थसूत्र' पर इस तरह की उभयभाषा मिश्रित यह प्रथम टीका है।

9. संस्कृत एवं प्राकृत भक्ति (आठ भक्तियों की टीका)

'भक्ति संग्रह' का परिचय 32 पृष्ठ पर दिया गया है। कृपया वहाँ देखें।

संस्कृत भाषा में मौलिक काव्य ग्रन्थ

1. स्तुति पथ, (2016)

'स्तुति पथ' संस्कृत भाषा में मौलिक काव्य ग्रन्थ है। स्तुति में भक्त अपने हृदय की भावनाओं को आराध्य के समक्ष प्रकट कर देता है। स्तुति में आराध्य के गुण-कीर्तन की प्रधानता होती है। प्रस्तुत कृति 'स्तुति पथ' में दश अष्टक हैं। यह जैन संतों, आचार्यों के स्तवन का सुन्दर स्तोत्र काव्य है। इसमें भगवान महावीर, भरतमुनि, कुन्दकुन्दाचार्य, आचार्य समन्तभद्र, आचार्य शान्तिसागर, आचार्य ज्ञानसागर, आचार्य विद्यासागर आदि की स्तुति की गई है। प्रार्थना, मौनाष्टकम् व निजबोधाष्टकम् के साथ-साथ आचार्यश्री जी की पूजन भी सम्मिलित की गई है। आचार्य श्री ज्ञानसागर के प्रशस्तिपत्र में चेतन व अचेतन कृतियों को निबद्ध करके उनका सम्पूर्ण कृतित्व समायोजित किया गया है।

जैन स्तुतिकारों का स्तुति करने का मूल उद्देश्य पापों से बचाना, अष्ट कर्मों का नाश, अर्हत्-पद की प्राप्ति व स्वान्तःसुखाय रहा है। प्रस्तुत कृति में पूज्य मुनिश्री की काव्य प्रतिभा का परिचय प्राप्त होता है। भक्त कवि ने संस्कृत के परम्परागत छन्दों के अतिरिक्त नवीन प्रयोग करके अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय दिया है। कृति में श्लोकार्थ, अन्वयार्थ और आंगल भाषानुवाद भी दिया गया है। स्तुत्यों के संक्षिप्त परिचय भी दिये गये हैं जिसने कृति की उपयोगिता द्विगुणित कर दी है। पूज्य महापुरुषों के गुणों के स्मरण से परम शान्ति की अनुभूति होती है। यह कृति प्रतिदिन पठनीय ही नहीं स्मरणीय भी है।

इस कृति में निम्नलिखित स्तुतियाँ हैं - 1. प्रार्थना 2. वीराष्टकम् 3. भरताष्टकम् 4. शारदाष्टकम् 5. कुन्दकुन्दाष्टकम् 6. समन्तभद्राष्टकम् 7. शान्त्यष्टकम् 8. ज्ञानाष्टकम् 9. विद्याष्टकम् 10. मौनाष्टकम् 11. निजबोधाष्टकम् 12. आचार्य श्री ज्ञानसागर प्रशस्ति पत्र 13. आचार्य श्री विद्यासागर पूजन।

2. श्रायस पथ

मुनिश्री प्रणम्यसागर विरचित 'श्रायस पथ' संस्कृत भाषा में निबद्ध काव्य है। भावों का स्पष्ट प्रकटीकरण, सरलता, कोमलता आदि विविध विशेषताओं से यह रचना अलंकृत है। इसमें 225 पद्य हैं जो विविध सत्रह छन्दों में आबद्ध हैं। इसमें विविध विषयों का वर्णन है यथा-दुर्जन-स्वभाव, श्रायसपथ, देव-महिमा, आगम-महिमा, गुरु-महिमा, कर्म विचार, उपयोग-कथन, अहिंसा-व्रत-कथन, सत्यव्रत कथन, अचौर्यव्रत-कथन, ब्रह्मचर्यव्रत-कथन, अपरिग्रहव्रत-कथन, योग-विचार, आत्म-चिन्तन-प्रेरणा, दीक्षा-महिमा, अलौकिक मुनि-वृत्ति तथा सामान्य सम्बोधन।

ग्रन्थारम्भ में मंगलाचरण में अरिहन्त, सिद्ध, गणधर परमेष्ठी व साधु समूह को नमन किया गया है। तदनन्तर समन्तभद्राचार्य, माँ जिनवाणी, आचार्य ज्ञानसागर एवं आचार्यश्री विद्यासागर जी को वन्दन किया है।

छह श्लोकों में दुर्जन-स्वभाव का वर्णन करते हुए बताया कि दोष देखना, कटुता, मायाचारी करना-ये दुष्ट की प्रकृति होती है। संगति से ही गुण-दोष प्रकट होते हैं। देव-महिमा में बताया है कि जिनेन्द्र, भगवान् के दर्शन से दर्शनमोहनीय कर्म का विनाश होता है। आगम अर्थात् जिनवाणी या देव वचन। 'गुरु महिमा का वर्णन 40 श्लोकों में किया है। गुरु की कृपा से कठिन कार्य भी सरल हो जाता है।

व्रत-कथनों में कृतिकार ने बताया है कि मन, वचन और काय से हिंसा, झूठ, चोरी, परिग्रह और मैथुन से मरण पर्यन्त दूर रहना चाहिए। ये पाँच पाप कहलाते हैं। इन पाँचों पापों के त्याग के बिना कर्मों की निर्जरा नहीं होती है।

'योग' शब्द का अर्थ कहीं समाधि, कहीं जोड़, कहीं अष्टांग योग तो कहीं आस्रव में लिया जाता है। योग से शारीरिक शुद्धि होती है, चित्तवृत्ति रुकती है, ध्यान की सिद्धि होती है। अत: योग ही समस्त पुरुषार्थों का साधन है। दीक्षा-ग्रहण करने से असीम सुख की प्राप्ति होती है। मुनिजन राग-द्वेष व हर्ष-शोकादि से रहित होते हैं। दिन में एक बार भोजन करते हैं व पैदल ही विहार करते हैं। मुनियों की अलौकिक वृत्तियों का वर्णन 23 श्लोकों में किया गया है।

अन्तिम 'सामान्य सम्बोधन' के 25 पद्यों में ज्ञान-पिपासुओं को सम्बोधित करते हुए बताया है कि जिस भोजन में अतिथि-संविभाग नहीं किया गया, वह निंदनीय है। मद से युक्त ज्ञान कभी भी शोभा नहीं देता। कृषि और धान्य से रहित देश निन्द्य है तथा अपमान सहित दिया गया दान भी निन्द्य है। कृति पठनीय ही नहीं मनन योग्य भी है।

3. सिद्धोदयाष्टकम्-अभी प्रकाशित नहीं हुआ है।

4. श्री वर्धमान स्तोत्र-13 जनवरी 2014, पौष शुक्ला 13, सोमवार (रतलाम)

परम पूज्य मुनिश्री प्रणम्यसागर जी द्वारा रचित 'श्री वर्धमान स्तोत्र' 64 छन्दों में निबद्ध संस्कृत भाषा का सचमुच एक प्रणम्य काव्य है। जैन मुनियों द्वारा स्तोत्र-रचना की एक लम्बी परम्परा है जिसमें आ. समन्तभद्र का स्वयंभूस्तोत्र और आ. मानतुंग का भक्तामर-स्तोत्र उल्लेखनीय है। परम्परा-विच्छेद जैसी स्थिति में जहाँ संस्कृत भाषा का उपयोग कम हो गया है, ऐसे समय में मुनिश्री जी ने अपने काव्य कौशल से विविध अलंकारों का प्रयोग करके श्री वर्धमान स्तोत्र की रचना रतलाम में सम्पन्न की है।

जैनधर्म में अरिहन्तों-तीर्थकरों की 64 ऋद्धियाँ होती हैं। उन्हीं ऋद्धियों का कथन करते हुए 'श्री वर्धमान स्तोत्र' 64 छन्दों में निबद्ध है। इस स्तोत्र का प्रत्येक छन्द स्वयं में एक ऋद्धि मंत्र है। श्री वर्धमान स्तोत्र में सिद्धहस्त कवि मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने भगवान महावीर के पाँच नामों का सकारण उल्लेख तथा उनके जीवन की घटनाओं का संक्षिप्त प्रनयन किया है। जन्म के दस अतिशय, एक ही काव्य नं. 14 में, केवलज्ञान के दस अतिशय-एक ही काव्य नं. 15 में, देवकृत 14 अतिशय काव्य नं. 36 से 41 तक निरूपित हैं। अष्ट प्रातिहार्यों का वर्णन काव्य 28 से 35 तक में है। चन्दनबाला की घटना का उल्लेख भी रचना में किया गया है।

इस स्तोत्र के संस्करण तीन प्रारूपों में प्रकाशित किये गए हैं।

1. प्रथम संस्करण में स्तोत्र व इसका हिन्दी पद्यानुवाद दिया गया है। संस्कृत कम समझने वाले पाठकों को इसका लाभ मिले इस भावना से इसका हिन्दी पद्यानुवाद किया गया है। इसके अब तक कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।
2. इस संस्करण में स्तोत्र व हिन्दी पद्यानुवाद के साथ-साथ भगवान महावीर की पूजा, जयमाला, ऋद्धि मंत्र और जाप-मंत्र की रचना करके मुनिश्री ने इस कृति को विधान के रूप में प्रस्तुत कर दिया है। इसके कई संस्करण प्रकाशित किए गए हैं।

3. श्री वर्धमान स्तोत्र की संस्कृत टीका वाराणसी के विद्वान पं. श्री उमाकान्त जी एवं डॉ. श्रीचन्द्र जैन (रेवाड़ी, हरियाणा) ने की है। संस्कृत टीका का हिन्दी अनुवाद श्रीमान डॉ. श्रीचन्द्र जैन ने किया है। एक नवीन संस्करण जिसमें स्तोत्र, अन्वयार्थ, अर्थ, प्रणम्यप्रभा संस्कृत टीका, संस्कृत टीका के हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित हो गया है। पठनीय है व संग्रहनीय है।

5. अनासक्त महायोगी (आचार्यश्री का जीवनवृत्त)-28 जून 2017

इस महाकाव्य में संस्कृत और प्राकृत भाषा में सरसता के साथ आ. विद्यासागरजी एवं गुरु आ. ज्ञानसागरजी का सम्पूर्ण ऐतिहासिक वृतान्त घटित प्रमुख घटनाओं सहित गुंफित है। इसमें सुभाषित वचनों की छटाएँ मूल संस्कृत व प्राकृत पढ़ने वालों के लिए अपूर्व आनन्द की अनुभूति प्रदान करती हैं। कहीं पर गद्यमय, कहीं पर पद्यमय, कहीं पर संस्कृत, कहीं पर प्राकृत, कहीं पर नीतिवाक्य, कहीं पर सिद्धान्त, कहीं पर व्यवहारिकता, कहीं पर अध्यात्म, ऐसी अनेकानेक विशेषताओं के लिए हुए यह महाकाव्य चम्पूमहाकाव्य की श्रेणी में आ जाता है।

आचार्यश्री के अनेक गुणों का वर्णन "गुणगण नायक" में व गुरु का 108 नामों से शताष्टस्तोत्र लिखकर मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने अनुपम गुरुभक्ति प्रकट की है। सभी पंचकल्याणकों, दीक्षित शिष्यों एवं वर्षायोग का वर्णन 12वें सर्ग में निबद्ध किया गया है। इस चम्पूमहाकाव्य में 12 सर्ग हैं, विस्तृत गद्य के अतिरिक्त, संस्कृत- प्राकृत भाषा के 747 छन्द हैं। आचार्यश्री का व्यक्तित्व व चेतन-अचेतन कर्तृत्व का सम्पूर्ण समावेश है।

इस चम्पूमहाकाव्य में हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है। केवल हिन्दी अनुवाद एक अन्य पुस्तक में भी इसी "अनासक्त महायोगी" के नाम से छपा है।

6. उपयोग शतकम्-(रेवाड़ी चातुर्मास 2017)

आत्मा का स्वभाव उपयोग है। उस उपयोग की शुद्धता व अशुद्धता का ज्ञान प्रत्येक भव्य जीव को होना चाहिए। उपयोग की शुद्धता के लिए जब कोई जीव प्रयास करता है तो उसके सामने कई प्रश्न उठ खड़े होते हैं। उन सब जिज्ञासाओं का समाधान करने का प्रयास इस 'उपयोग शतक' कृति में किया गया है। गृहस्थ श्रावक हो या श्रमण समुदाय सभी के लिए इस कृति के माध्यम से साधना का सोपान बढ़ेगा।

वर्तमान में प्रचलित अनेक एकान्त मान्यताओं का निरसन भी इस कृति में किया गया है। व्यवहार नय की तात्कालिक उपादेयता, आदरणीयता कैसे होती है, यह कृति के

अध्ययन से स्पष्ट होगा। इस कृति के अन्त में ध्यान, योग के लिए आवश्यक तथ्य और अनुभूति का भी वर्णन है। पाठकगण इस कृति से क्या लाभ ले पायेंगे यह तो उनके ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम पर निर्भर करेगा। मुनिवर श्री प्रणम्यसागर जी ने सभी के उपकारार्थ इन श्लोकों का हिन्दी अन्वयार्थ, अर्थ, विशेषार्थ एवं दोहानुवाद भी करके इस कृति को अत्यन्त उपयोगी बना दिया है। 107 श्लोकों में निबद्ध यह कृति सभी भव्यजनों के हित का कारण बनेगी ऐसी भावना है।

यह कृति रेवाड़ी वर्षायोग 2017 में पूर्ण हुई।

7. अर्हं अष्टांगयोग शतकम्-(2019 चातुर्मास, मेरठ, उ.प्र.)

'अर्हं अष्टाङ्गयोग शतकम्' संस्कृत भाषा का आधुनिक शतक काव्य है जिसमें योग की विविधमुखेन व्याख्या करते हुए सिद्ध किया गया है कि योग जीवों को संसार और मोक्ष-दोनों को जोड़ने का माध्यम है। योगदर्शन के अनुसार महर्षि पतञ्जलि द्वारा योग के आठ अंग मान्य हैं-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। परन्तु जैनागमों में योग के अष्टांग अन्य रूप से प्राप्य हैं- ध्याता, ध्यान, ध्यान-फल, ध्येय, ध्यान-विषय, क्षेत्र, काल, रीति (विधि)। जिनका सम्यक् विवेचन प्रस्तुत कृति में इतनी सुगमता और सरलता से किया गया है जिससे आबाल-वृद्ध पाठक उन्हें सहजता से ज्ञात करने में सक्षम हो सकें। विशुद्धात्मा को लक्षित करते हुए अष्टांगों में ध्याता की एकाग्रता को महत्व दिया गया है। साथ ही 'अर्हं' की निष्पत्ति करते हुए स्पष्ट किया गया है कि यह पञ्चपरमेष्ठियों के आद्य वर्णों से निर्मित बीजाक्षर मन्त्र है जो साधकों को ध्यातव्य है। आधुनिक संदर्भ में आलोच्य शतक की आचार-संहिता अनुसार आचरण करना मानव-जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

यह 107 श्लोकों में निबद्ध ध्यान व योग की अद्वितीय कृति है। अंग्रेजी अनुवाद के साथ भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित होने जा रही है।

8. स्तुतिशतकम्-(दिनांक 1-11-2019, शुक्रवार, मेरठ, उ.प्र.)

यह वर्ष प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तिसागर जी महाराज की मुनिदीक्षा (फाल्गुण शुक्ला चतुर्दशी) का शताब्दी महोत्सव वर्ष है, जो कि 20 मार्च 2019 से 2020 तक मनाया जा रहा है। मुनिश्री प्रणम्यसागर जी द्वारा आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज की भक्ति में तन्मय होकर इस 'स्तुतिशतकम्' की रचना की गई है।

चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तिसागर जी महाराज ने संयम पथ को विशुद्ध बनाकर इस लोक को उपकृत किया है। आचार्यश्री ने निजानुभव एवं ज्ञान से जन-जन को संयममार्ग पर चलने की मंगल प्रेरणा दी। समाज में व्याप्त मिथ्यात्व को दूर करके जैनधर्म का पालन करने के लिए निरन्तर प्रेरित किया। मुनिश्री जी ने आराध्य आचार्य प्रवर के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं को लक्षित करके इस भक्तिपरक स्तुतिशतक के माध्यम से विद्वानों और समाज को अनुग्रहीत किया है। स्तुतिकार कहते हैं कि- हे गुरुवर! इस कलिकाल में आप जैसे महान् आचार्य का उदय मेरे लिए ही हुआ है। शार्दूल विक्रीडित छन्द व वसन्ततिलका छन्द में लिखी गई यह प्रशंसनीय रचना आपको भी भक्तिरस में अवगाहन कराने में समर्थ है।

9. श्री शान्तिनाथ स्तोत्र शतकम्

भगवान श्री शान्तिनाथ के जीवन पर आधारित मौलिक काव्य ग्रन्थ है। इसमें वसन्ततिलका छन्द में रचना की गई है। यह रचना हस्तिनापुर प्रवास में पौष शुक्ला दिन को शनिवार - 4 जनवरी 2020 को पूर्ण हुई है।

प्राकृत-भाषा में मौलिक ग्रन्थ

1. तित्थयर भावणा (सोलहकारण भावनाओं पर प्राकृत गाथाएँ एवं विवरण) (2013)

मुनि श्री प्रणम्य सागर जी द्वारा विरचित 'तित्थयर भावणा' सोलह कारण भावनाओं पर प्राकृतभाषा का एक महनीय ग्रन्थ है। जैन साहित्य में सोलहकारण-भावनाओं पर रचित यह आद्य मौलिक कृति है। मुनिश्री ने इस कृति को 131 गाथाओं में संजोया है। सर्वजन-हिताय की भावना से मुनिश्री ने इसका पद्यानुवाद, अन्वयार्थ एवं व्याख्या लिखकर इसे सर्वजनोपयोगी बना दिया है।

21वीं शताब्दी की यह कृति तीर्थंकर जैसे अद्‌भुत व्यक्तित्व को प्राप्त करने की भावना में संलग्न कराके तीर्थंकर प्रकृति के पुण्य का आस्रव कराने में सहयोगी है। सोलहकारण-भावना पर 'वारसाणुवेक्खा' की तरह अभी तक कोई स्वतंत्र कृति उपलब्ध नहीं थी, इस कमी को 'तित्थयर भावणा' ने पूरा किया है। जो श्रावक और साधुगण सोलहकारण व्रत-विधान करते हैं उनके लिए इस ग्रन्थ का स्वाध्याय बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। इस ग्रन्थ का प्रकाशन भगवान् वर्धमान महावीर की जन्मभूमि पर स्थित और बिहार सरकार द्वारा संचालित 'प्राकृत, जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान', वैशाली से हुआ है, यह भी श्लाघ्य है।

2. दार्शनिक प्रतिक्रमण

मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने सभी गृहस्थों के लिए सरल हृदयग्राही संस्कृत और हिन्दी भाषा में इस प्रतिक्रमण की रचना की है। इसके द्वारा श्रावकों को भी यह भान होता है कि हमने भी श्रमणों की तरह प्रतिक्रमण करके अपने दोषों का निवारण किया है।

जिस प्रकार श्रावकों के बाह्य चिह्न-देवदर्शन, जल छानकर पीना और रात्रि-भोजन-त्याग है, उसी तरह उनकी आध्यात्मिक पहचान प्रतिक्रमण और सामायिक से होती है। श्रावक के जीवन में कषायवश पग-पग पर अन्तरंग व बाह्य दोष लगा करते हैं, जिनका शोधन एक मोक्षमार्गी के लिए आवश्यक होता है। भूतकाल में जो दोष लगे हैं उनके शोधनार्थ प्रायश्चित, पश्चात्ताप व गुरु के समक्ष अपनी निन्दा व गर्हा करना प्रतिक्रमण कहलाता है। जिन-दर्शन में जन्म लेने वाले और विशेषत, श्रद्धा रखने वाले सभी दार्शनिक हैं। जिन्होंने दर्शन-प्रतिमा मात्र को ग्रहण किया है, वे दार्शनिक हैं। इन सभी दार्शनिक श्रावकों के लिए यह प्रतिक्रमण पाठ है। प्रतिक्रमण की प्रक्रिया में श्रावक स्वयं को धिक्कारते हुए अपने आपको दुष्ट, मूर्ख, पापी आदि मानता है एवं स्वयंकृत पापों के लिए क्षमा याचना करता है एवं सभी जीवों को क्षमा करता है।

प्रतिक्रमण के लिए पञ्चपरमेष्ठी की, 15 कर्मभूमियों में सभी अरिहन्त व तीर्थंकरों की व सिद्धों की वन्दना की गई है। अष्ट मूलगुणों का पालन, सप्त व्यसनों का त्याग करते हुए प्रतिक्रमण करना चाहिए। श्री श्रुतभक्ति व श्री आचार्य-भक्ति करने का उपदेश दिया गया है। इस कृति के अन्त में देव की 84 प्रकार की आसादना, गुरु और शास्त्र की 33 प्रकार की आसादना बताई गई हैं। सभी जीवों के पापों के क्षय एवं मंगल कामना हेतु मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने इस 'दार्शनिक प्रतिक्रमण' की रचना की है।

3. अष्टपाहुड (प्राकृत टीका, 1-6)

आचार्य कुन्दकुन्द विरचित षट्पाहुड पर लिखी गई प्राकृत भाषा में प्रथम टीका है। इस टीका का नाम भी नन्दिनी टीका है। लिंगपाहुड़ और शीलपाहुड़ पर पहले लिखी गई उसी आधार पर इस टीका का नाम भी नन्दिनी टीका रखा गया है। आचार्यश्री के संयम स्वर्ण महोत्सव पर जब 50 ग्रन्थ प्रकाशित करने का मन बना तब संघ के निर्देश पर मुनिश्री ने यह टीका लिखी। मंदसोर जनपद मध्यप्रदेश में वर्षायोग 2015 के समय यह टीका लिखी गई।

प्रत्येक पाहुड़ टीका के साथ स्वतंत्र ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित हो रहा है। जिसमें पूर्व के विद्वानों द्वारा आचार्य कुन्दकुन्द का परिचय समाविष्ट है। वर्तमान के विद्वानों की भी यथासम्भव सम्मति, प्रस्तावना निबद्ध है। कुन्दकुन्दाष्टक, आचार्य श्री विद्यासागर कृत

पद्यानुवाद, टीका की उत्थानिका, गाथा का अन्वयार्थ, प्राकृत टीका, उसका हिन्दी अर्थ सभी कुछ एक साथ निबद्ध है। प्रत्येक पाहुड़ के अन्त में गाथा और टीका का प्राकृत शब्दकोश संकलित है जो प्राकृत के अध्येताओं के लिए बहुत उपयोगी है। परिशिष्ट में गाथाओं का मूलपाठ और टीका में प्रयुक्त सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची भी दी है जो शोधकर्ताओं के लिए उपयोगी है। इसके अतिरिक्त आचार्य श्री ज्ञानसागर (गुरुणां गुरु) का पद्यानुवाद भी निबद्ध है। यह पद्यानुवाद कभी पुरानी पत्रिका में छपा था। अभी तक यह अप्रकाशित था। इस पद्यानुपाद में कई पद्य छूटे हैं। जितना भी उपलब्ध हुआ वह सुरक्षित किया गया है। इस तरह दर्शनप्राभृत, चारित्रप्राभृत आदि एक स्वतंत्र शास्त्र के रूप में पाठकों के सामने आए हैं जो कि महाविद्यालय में कोर्स के लिए भी पठन-पाठन में उपयोगी सिद्ध होंगे।

4. धम्मकहा-(बिजौलिया चातुर्मास, 2016)

यह प्राकृत वाङ्मय में दिगम्बर जैन कथाओं का गद्य शैली में रचित प्रथम ग्रन्थ है। आचार्यों ने पुराणग्रन्थों में प्रत्येक कथानक के साथ यथासमय जैन सिद्धान्तों का निरूपण इतनी कुशलता के साथ किया है कि किसी अजैन विद्वान् ने कहा है-"कथायें लिखना तो कोई जैन विद्वानों से सीखे।" प्रथमानुयोग के अन्तर्गत पुराण-ग्रन्थों में कथाओं का वर्णन मिलता है। आचार्य समन्तभद्र ने प्रथमानुयोग को बोधि-समाधि का खजाना कहा है।

कथाएँ आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेजनी और निर्वेजनी के भेद से चार भागों में विभक्त है। इनमें धर्म के फल का वर्णन करने वाली संवेजनी कथा है और वैराग्य उत्पन्न करने वाली निर्वेजनी कथा है। प्रस्तुत ग्रन्थ में इन्हीं दो प्रकार की कथाओं का वर्णन है। कथा वही कहलाती है जिसके सुनने से हेय-उपादेय का निर्णय हो जाता है। इस ग्रन्थ में एक ओर, प्राकृत और दूसरी ओर, हिन्दी-अनुवाद दिया गया है। कथाओं में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए कृति पठनीय है।

5. प्राकृत रचना भास्कर एवं प्राकृत शब्दकोश

प्राकृत भाषा में रचित आगमों के अध्ययन एवं स्वाध्याय के लिए प्राकृत भाषा की प्रारम्भिक जानकारी आवश्यक है इसी उद्देश्य को लेकर 'प्राकृत विद्या पाठ्यक्रम' का निर्माण किया गया है। जो कि 'प्राकृत रचना भास्कर एवं प्राकृत शब्दकोश' के नाम से पाठकों के हाथ में उपलब्ध है। जिसके माध्यम से जनसामान्य एवं जिन-उपासकों के अन्दर भाषा की जानकारी के साथ-साथ स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़ सकेगी। सामाजिक, पारिवारिक और वैयक्तिक स्तर पर स्वाध्याय की रुचि जागृत की जा सके, जगह-जगह 'प्राकृत विद्या पाठशाला' स्थापित की जा रही है। इस पाठशाला के निमित्त से प्राकृत भाषा की जानकारी

के लिए रचित इस कृति में क्रमशः प्राकृत के संज्ञा-सर्वनाम शब्दों के विभक्ति रूप, क्रियापदों के धातुरूपों और प्राकृत के सामान्य नियमों की जानकारी तथा प्राकृत अभ्यास रचना के प्रयोग, प्राकृत विद्या पाठ्यक्रम में दिये गये हैं। इस कृति के अन्त में आचार्य नेमिचन्द्र द्वारा रचित द्रव्यसंग्रह की प्रारम्भिक 14 गाथाओं का अन्वय और अर्थ देकर उसकी व्याकरणात्मक पृष्ठभूमि स्पष्ट की गई है जिसका उद्देश्य स्वाध्याय की प्रवृत्ति को जागृत करना है। निश्चित रूप से यह प्रवृत्ति दिनों-दिन कार्तिकेयानुप्रेक्षा, प्रवचनसार, समयसार, पुरुषार्थसिद्धयुपाय, वसुनन्दिश्रावकाचार, तित्थयर भावना, नई छहढ़ाला जैसे ग्रन्थों का अध्ययन करने में सहायक बन सकेगी।

प्राकृत भाषा की प्रारम्भिक जानकारी के लिए व अभ्यास के लिए कृति अत्यन्त उपयोगी है। प्राकृत भाषा सीखने वालों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

6. प्राकृत शिक्षा भाग-(1, 2, 3, 4)

प्राकृत-विद्या-पाठ्यक्रम के अर्न्तगत प्राकृत-पुस्तकों का परिचय

पाइय सिक्खा (प्राकृत शिक्षा) भाग-1

'पाइय सिक्खा भाग-1' पुस्तक में मुनिश्री 108 प्रणम्यसागर जी महाराज ने मुख्य रूप से प्राकृत भाषा की प्रारम्भिक जानकारी, चौबीस तीर्थकरों के चिह्न सहित प्राकृत भाषा में नाम, प्राकृत संख्या, णमोकार मंत्र आदि के साथ-साथ प्राकृत भाषा के संज्ञा-सर्वनाम, शब्दों के विभक्ति रूप, क्रियापदों के धातुरूप, क्रिया-विशेषण शब्द और प्राकृत के सामान्य नियमों की जानकारी तथा अभ्यास पाठ (वाक्य-निर्माण विधि) इत्यादि दिये गए हैं।

पाइय सिक्खा (प्राकृत शिक्षा) भाग-2

'पाइय सिक्खा भाग-2' पुस्तक में मुनिश्री 108 प्रणम्यसागर जी ने प्राकृत-भाषा की प्रारम्भिक जानकारी, प्राकृत-संख्या, प्राकृत में इन्द्रिय, परमेष्ठी, चौबीस तीर्थंकर स्तुति, प्राकृत कथा, सूखे फलों एवं फूलों के नाम के साथ-साथ प्राकृत के संज्ञा, सर्वनाम, शब्दों के विभक्ति रूप, क्रियापदों के धातुरूप, क्रिया-विशेषण और प्राकृत-भाषा के सामान्य नियमों की जानकारी तथा अभ्यास पाठ (वाक्य निर्माण विधि) इत्यादि दिये गए हैं।

पाइय सिक्खा (प्राकृत शिक्षा) भाग-3

'पाइय सिक्खा भाग-3' पुस्तक में मुनिश्री 108 प्रणम्यसागर जी ने प्राकृत भाषा की प्रारम्भिक जानकारी, प्राकृत संख्या, गोम्मटेश-थुदि, प्राकृत कथा, प्राकृत सुभाषित वचन, प्राकृत में लेश्याओं, दस धर्मों, आचार्यों, ग्रन्थों, तीर्थक्षेत्रों तथा हरे फलों के नाम देने के

साथ-साथ प्राकृत के संज्ञा-सर्वनाम, शब्दों के विभक्ति रूप, क्रियापदों के धातुरूप, क्रिया विशेषण और प्राकृत के सामान्य नियमों की जानकारी तथा अभ्यास पाठ (वाक्य निर्माण विधि) इत्यादि दिये गए हैं।

पाइय सिक्खा (प्राकृत शिक्षा) भाग-4

'पाइय सिक्खा भाग-4' पुस्तक में मुनिश्री 108 प्रणम्यसागर जी ने प्राकृत भाषा की प्रारम्भिक जानकारी, प्राकृत-संख्या, पंचमहागुरु भत्ति, सिद्ध-सुद-आइरिय-भत्ति, बोह-कहा (बोध कथा), प्राकृत लघु निबन्ध, राशियों के अनुसार बच्चों के प्राकृत में नाम के साथ-साथ प्राकृत भाषा के संज्ञा-सर्वनाम, शब्दों के विभक्ति रूप, क्रियापदों के धातुरूपों, क्रिया-विशेषण और प्राकृत भाषा के सामान्य नियमों की जानकारी तथा अभ्यास पाठ (वाक्य निर्माण विधि) इत्यादि दिये गए हैं।

7. गोम्मटेस पडिमा भत्ती–(20-11-2017, भिवानी, हरियाणा)

परम पूज्य मुनिश्री प्रणम्यसागर जी द्वारा गोम्मटेश्वर बाहुबली भगवान् की भावपूर्ण भक्ति प्राकृत भाषा में 30 गाथाओं में की गई है। यह स्तुति मुनिराज ने भिवानी के मन्दिर जी में दिनांक 20-11-2017 मगसिर सुदी दोज को लिखी।

हिन्दी में अनुवादित ग्रन्थ

1. 'सत्कर्म पञ्जिका'

आचार्य पुष्पदन्त व भूतबलि ने गुरु धरसेनाचार्य से सिद्धान्त विषय का अध्ययन किया था। श्री पुष्पदन्त एवं भूतबलि प्रणीत षट्खण्डागम धवला सिद्धान्त ग्रन्थ के पञ्चम खण्ड 'सत्कम्मपञ्जिया' का हिन्दी अनुवाद मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने किया है।

षट्खण्डागम धवला सिद्धान्त ग्रन्थ के पञ्चम खण्ड में वर्गणाओं का सविस्तार वर्णन किया गया है। यह निबन्धन, प्रक्रम, उपक्रम और उदय इन चार अनुयोग द्वारों की एक पञ्जिका है। इस पञ्जिका में 70 विषयों पर चर्चा की गई है।

मूल षट्खण्डागम में कृति वेदनादि 24 अनुयोग द्वारों में से प्रथम छह अनुयोग द्वारों की प्ररूपणा की गई है। शेष निबन्धन आदि 18 अनुयोग द्वारों की प्ररूपणा श्री वीरसेनाचार्य ने की है। इन 18 अनुयोग द्वारों में से केवल चार अनुयोग-द्वार निबन्धन, प्रक्रम, उपक्रम और उदय ही प्राप्त हैं। इस पञ्जिका की केवल एक प्रति धवला पुस्तक में निबद्ध है, इसके अतिरिक्त और कहीं प्राप्त नहीं है।

पञ्जिका के प्रारम्भ में लिखा गया है कि महाकर्म प्रकृति-प्राभृत के कृति, वेदना आदि 24 अनुयोग द्वारों में से कृति और वेदना अधिकार का वेदनाखण्ड में, स्पर्श, कर्म, प्रकृति और बन्धन अनुयोगद्वारों में से बन्ध तथा बन्धनीय अनुयोगद्वार वर्गणाखण्ड में, बन्ध विधान नामक अनुयोगद्वार महाबन्ध में और बन्धन अनुयोग का क्षुद्रकबन्ध में विस्तार से वर्णन है।

वृत्तिसूत्रों के विषय पदों को खोलने वाले विवरण को पञ्जिका कहते हैं। पञ्जिका में पूरे ग्रन्थों का व्याख्यान नहीं होता है, परन्तु उसके कठिन व गम्भीर विषयों का खुलासा होता है। यहाँ पञ्जिकाकार ने वीरसेन स्वामी कृत सत्कर्म के वाक्यों को लेकर उनका खुलासा किया है। उनकी यह पञ्जिका धवला की तरह प्राकृत व गद्य में है।

इस पञ्जिका में बहुत से विषय बहुत रोचक हैं तथा कुछ विषय अति दुरुह भी है। मुनिश्री ने इस दुरुह कार्य को अति सरल, सहज व बोधगम्य भाषा में परिवर्तित कर शंका समाधान के माध्यम से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। मुनिश्री का यह प्रयास धवला ग्रन्थ पढ़ने वाले जिज्ञासुओं के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

इस कृति का हिन्दी अनुवाद मुनिश्री ने 12 नवम्बर 2008 राहतगढ़ (म.प्र.), दिन बुधवार को पूर्ण किया था।

2. दश भक्ति टीका-भक्ति संग्रह–(अक्तूबर 2011)

'भक्ति संग्रह' ग्रन्थ मुनि और श्रावकों की नित्य-नैमित्तिक क्रियाओं का संग्रह है। यह संग्रह चार अध्यायों में विभक्त है। पहला अध्याय नित्यक्रियाप्रयोगविधि नाम का है। आरम्भ में कृतिकर्म, देववन्दनाप्रयोगविधि और देववन्दनाप्रयोगानुपूर्वी के सानुवाद पाठ का संग्रह दिया है क्योंकि मुनियों की दैनिक चर्या देववन्दना या सामायिक से ही प्रारम्भ होती है।

द्वितीय अध्याय में तीन प्रतिक्रमण पाठ हैं। तीनों ही आगमानुसार हैं।

तृतीय अध्याय में छोटी बड़ी भक्तियों का समावेश किया गया है। भक्तियों की सब टीकाएं प्रभाचन्द्राचार्य-प्रणीत हैं। इनके बनाये ग्रन्थ क्रियाकलाप में तीन अध्याय हैं। उनमें से पहला अध्याय ज्यों का त्यों रख दिया है। दूसरे अध्याय में चैत्यभक्ति और स्वयम्भू की टीकाएं हैं और तीसरे अध्याय में 1. शान्त्यष्टक, 2. शान्तिपाठ या शान्तिभक्ति, 3. गजांकुशकृत अभिषेक पाठ, 4. मुनीन्द्रपूजानवक, 5. भक्तामरस्तोत्र और 6. जिनसेन-प्रणीत सरस्वतीपूजा की टीकाएं हैं। चैत्यभक्ति की टीका दूसरे अध्याय से तथा शान्त्यष्टक और

शान्तिभक्ति की टीका तीसरे अध्याय से ली गई है। वीरभक्ति और चतुर्विंशतिस्तव की टीका प्रतिक्रमण-टीका से तथा पंचगुरुभक्ति और सामायिक भक्ति की टीका सामायिक-टीका से उद्धृत की गई है।

चतुर्थ अध्याय का पाठ भी पूर्वशास्त्रानुसार संकलित किया गया है। दीक्षापटल का पाठ भी ज्यों का त्यों दिया गया है। सर्व विदित है कि संस्कृत भक्तियाँ पूज्यपादस्वामी कृत व प्राकृत की भक्तियाँ कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा प्रणीत हैं।

3. प्रवचनसार (सरोज भास्कर टीका)

प्रवचनसार के रचयिता आचार्य कुन्दकुन्द हैं। इस ग्रन्थ की सरोजभास्कर संस्कृत-टीका श्री प्रभाचन्द्राचार्य ने की है। आचार्यश्री विद्यासागर जी ने प्रवचनसार का हिन्दी पद्यानुवाद किया है।

मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने सरोजभास्कर संस्कृत टीका का हिन्दी अनुवाद और विशेषार्थ करते हुए सम्पादन भी किया है। यह टीका सरल, सुबोध एवं सरस भाषा में है। आवश्यकतानुसार टीकार्थ व उत्थानिका सरोजभास्कर टीका में समाहित है। इसमें 311 गाथाएँ हैं जो तीन अधिकारों में विभक्त हैं। प्रथम ज्ञानतत्त्व अधिकार में शुद्ध परिणाम और शुभोपयोग अधिकार है। द्वितीय ज्ञेयतत्त्व अधिकार में द्रव्यसामान्य-व्याख्या एवं दर्शन-अधिकार सम्मिलित हैं। तृतीय चारित्रचूलिका अधिकार में आचरण प्रज्ञापना, मोक्षमार्ग तथा शुभोपयोग अधिकार सम्मिलित है।

प्रवचनसार का सम्पादन करते हुए ग्रन्थ के अन्त में गाथा, अनुक्रमणिका तथा शुद्धिपत्र संलग्न किया गया हैं।

4. कथा कोश-'आराधना कथा प्रबन्धन' का हिन्दी अनुवाद

'आराधना- कथा-प्रबन्धन' की रचना आचार्य प्रभाचन्द्र ने संस्कृत में की है। ग्रन्थकार ने इस कृति का नाम 'आराधना-कथा-प्रबन्धन' इसीलिए दिया क्योंकि इसमें संग्रहीत कथाएं आराधना के विषयों से संबद्ध है। आचार्य प्रभाचन्द्र जैन-साहित्य में तर्कग्रन्थकार के रूप में प्रसिद्ध हैं, इन्होंने माणिक्यनन्दि जी कृत 'परीक्षामुख' पर 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' नामक विशालकाय व्याख्या की है जो इनके अद्वितीय मनीषी होने का प्रमाण है।

'आराधना-कथा प्रबन्धन' का मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने 'हिन्दी कथा कोश' नामक अनुवाद किया है। यह कृति दो भागों में विभक्त है। इसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन चारों आराधनाओं का वर्णन है। भगवती आराधना को मूल आराधना भी कहते हैं। प्रत्येक

कथा के आरम्भ में ग्रन्थकार ने संस्कृत गद्य के साथ पद्य या भगवती आराधना की गाथा का अंश उद्धृत किया है।

इस कृति में महापुरुषों के कथानक का संक्षिप्त विवरण हैं। इसमें 90 संक्षिप्त कथाएं हैं। तदनन्तर 32 अन्य छोटी-छोटी कथाएं सम्मिलित हैं। 'आराधना कथा प्रबन्धन' के अन्त में अनुवाद की भावना, उद्धृत पद्यों की सूची, अकरादि क्रम से ग्रन्थ में आए हुए नामों की सूची संलग्न है।

आत्मशान्ति के उद्देश्य से सन् 1999 में मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी को नर्मदा नदी के तट पर इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद किया गया है। समस्त प्राणियों में सौहार्द, अपनापन, वात्सल्य हो, गृहस्थ गुणग्राही हो, विद्वान निग्रही हो और साधु निष्काम हो-यह भावना व्यक्त की गयी है। अन्त में, ग्रन्थ लेखन में प्रमादवश आयी हुई त्रुटियों के लिए क्षमा धारण करते हुए शुद्ध पढ़ने हेतु निवेदन किया गया है।

5. सत्यशासन-परीक्षा

आचार्य श्री विद्यानन्दि विरचित यह ग्रन्थ भारतीय दार्शनिक परम्परा में प्रवाहित समस्त दर्शनों का समुच्चय करके सत्य दर्शन की परीक्षा करने वाला अमूल्य ग्रन्थ है। मूल ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद उपलब्ध नहीं था जिससे ग्रन्थ का हार्द समझ में नहीं आ पाता था इस कमी की पूर्ति पूज्य मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने अनुवाद द्वारा की है। न्याय की बहुलता वाले कुछ ग्रन्थ ऐसे भी होते हैं जो सूत्र का भी कार्य करते हैं और गाईड का भी। "सत्यशासन-परीक्षा" एक ऐसा ही ग्रन्थ है जिसकी आज महती आवश्यकता है। सभी शिक्षार्थियों को राग-द्वेष का परिहार करने के लिए ही न्याय पढ़ना बहुत आवश्यक है।

इस ग्रन्थ में – 1. पुरुषाद्वैत, 2. शब्दाद्वैत, 3. विज्ञानाद्वैत, 4. चित्रद्वैत, 5. चार्वाक, 6. बौद्ध, 7. सेश्वरसांख्य, 8. निरीश्वरसांख्य, 9. नैयायिक, 10. वैशेषिक 11. भाट्ट, 12. प्रभाकर, 13. तत्त्वोपप्लव, 14. अनेकान्त-शासन परीक्षा। इन सभी शासनों की परीक्षा की गई है और सत्यशासन को प्रतिष्ठापित किया गया है। षड्दर्शन का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करने वालों को यह ग्रन्थ कुंजी के रूप में हितकारी है। अन्य दर्शनों की जानकारी लेने के पश्चात् जैनदर्शन की विशेषता व महत्ता स्पष्ट परिलक्षित होती है।

6. युक्त्यनुशासन का हिन्दी अनुवाद

युक्त्यनुशासन आचार्य समन्तभद्र द्वारा रचित कृति है। इन्होंने इस ग्रन्थ में जिनमत की स्थापना के बाद भगवान महावीर की स्तुति की है।

मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद और 64 कारिकाओं में व्याख्या, सुगठित और सरल भाषा में की है। प्रथम 6 कारिकाओं में जिनमत की अद्वितीयता स्थापित करके कारिका 7 से सभी मतों का युक्तिपूर्वक खण्डन करते हुए प्रमाण और नय से निश्चित हुए पारमार्थिक तत्त्व को सिद्ध किया है। नित्य एकान्तवादी बौद्ध आदि के क्षणिक मत के प्रमाण और नय के माध्यम से हेतुओं के आलम्बन से उनका खण्डन किया है। जो पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु से इन तत्त्वों की चेतना की उत्पत्ति मानते हैं, उनका ही खण्डन कारिका 33 से 36 तक में किया गया है। कारिका 39 तक इस कृति का प्रथम प्रस्ताव के रूप में एकाधिकार घोषित किया गया है। भगवान् महावीर का सर्वोदयतीर्थ सर्वकल्याणकारी है, जिससे सभी का उदय, अभ्युदय होता है वह आपका तीर्थ सकल दुर्नयों का अन्त करने वाला है। जिससे उन नयों के कारण शारीरिक-मानसिक दुखों के लक्षण रूप आपत्तियों का अन्त हो जाता है।

अत्यन्त दुरुह एवं क्लिष्ट - युक्त्यनुशासन का बहुत सरल व बोधगम्य भाषा में हिन्दी अनुवाद मुनिश्री ने भव्य जीवों के कल्याण के लिए किया है।

7. नाममाला (भाष्य)–(बिजौलिया, 24-8-2016)

महाकवि धनञ्जय विरचित "नाममाला" ग्रन्थ शब्दज्ञान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी है। संस्कृत अध्येताओं में चर्चित इस कृति पर पं. शम्भूनाथ त्रिपाठी व्याकरणाचार्य का एक भाष्य भी उपलब्ध है। भाष्य का हिन्दी अनुवाद अब तक नहीं हुआ था, इस कार्य को पूज्य मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने सम्पादित किया है।

नाममाला कोश सुन्दर और व्यवहारोपयोगी आवश्यक शब्दों से समृद्ध ग्रन्थ है। महाकवि धनञ्जय ने 200 श्लोकों में ही संस्कृत भाषा के प्रमुख शब्दों का चयन कर गागर में सागर भर दिया था। शब्द से शब्दान्तर बनाने की इसकी अपनी निराली पद्धति है। जैसे पृथिवी के नामों के आगे 'धर' जोड़ देने से पर्वत के नाम बन जाते हैं।

सिद्धान्त-ग्रन्थों में नामों के छह भेद कहें हैं-1. गौण्यपद नाम, 2. नो गौण्यपद नाम, 3. आदानपद नाम, 4. प्रतिपक्षपद नाम, 5. उपचयपद नाम, 6. अपचयपद नाम। इन नामों का महत्व और उनका छह प्रकारों से विभाजन जैनाचार्यों की अपूर्व देन है। नामों के पर्यायवाची अनेक नाम होते हैं। उन सबका समायोजन एक साथ करना नामों की माला या समूह कहा जाता है इसलिए 'नाममाला' इसका सार्थक नाम है। इस ग्रन्थ में उपयोगी छह परिशिष्ट भी दिये गये हैं।

8. सत्संख्यादि अनुयोग-द्वार–(भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित)

प्रस्तुत ग्रन्थ में सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व के आधार से सभी गुणस्थान और मार्गणाओं को स्पष्ट किया गया है। इन आठ अनुयोगों में से सत्, भाव तथा अल्पबहुत्व का वर्णन तो सरल था। अतः वह तो मूल ग्रन्थ के अनुसार ज्यों का त्यों ही दिया है, परन्तु अन्य पाँच अनुयोगों को स्पष्ट करके अतिगहन विषय को सर्वोपयोगी बना दिया है। विभिन्न स्थलों पर रेखाचित्र भी दिये हैं, जिनसे विषय अत्यन्त सरल तथा ग्राह्य हो जाता है।

विशेषतः प्रस्तुत पुस्तक में-संख्या प्ररूपणा के अर्न्तगत अनन्तानन्त, असंख्यात तथा असंख्यातासंख्यात का विस्तृत वर्णन किया है। क्षेत्र-प्ररूपणा के अर्न्तगत श्रेणी, प्रतर आदि आठ राशियों को तथा केवली समुद्घात में रुद्ध क्षेत्र का वर्णन विशेषरूप से समझाया है। स्पर्शन प्ररूपणा के सरलीकरण के अन्तर्गत सासादन सम्यग्दृष्टि के स्पर्शन का स्पष्टीकरण। काल-प्ररूपणा में अन्तर्मुहूर्त गिनने का तरीका, योग-गुणस्थान आदि के परिवर्तनों की व्याख्या, लेश्याओं के जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर का दिग्दर्शन। अन्तर प्ररूपणा में अन्तर्मुहूर्त कैसे लगाये जाएंगे? यह रेखाचित्रों द्वारा अन्तर को समझाने का ढंग अत्यन्त प्रशंसनीय है।

'संस्तवनम्' पुस्तक में चार स्तोत्र संकलित हैं (9-12)

9. अद्याष्टक स्तोत्र-

यह 'अद्याष्टक स्तोत्र' यद्यपि बहुत सरल है किन्तु इसके भाव बहुत गम्भीर हैं। मुनिश्री कहते हैं जब मैंने पहली बार इसे पढ़ा तो इसमें बहुत बड़ा विज्ञान दिखाई दिया। आत्मोन्नति का अद्भुत भाव इसमें है। वस्तुतः भगवान के दर्शन तो सभी करते हैं। प्रत्येक जैन श्रावक, श्रमण आदि सभी भगवान का दर्शन-वंदन करते हैं किन्तु उस दर्शन में मन में कैसे भाव हों, यह इस स्तोत्र में समाहित है। बहुधा प्रतिदिन दर्शन करने वाले या तो परम्परा वश दर्शन करते हैं या किसी के दबाव वश या अभ्यास वश। कैसे भी हो, प्रतिदिन का दर्शन एक नया दर्शन होना चाहिए। वही भगवान, वही मन्दिर होते हुए भी प्रतिदिन ऐसा लगना चाहिए कि हे भगवन्! मैंने आपका दर्शन आज ही किया है। इसलिए इस स्तोत्र का नाम अद्याष्टक सार्थक है। अद्य-आज। अष्टक-आठ छन्द।

यद्यपि इस स्तोत्र में 11 छन्द हैं, संयोगवश मुनिश्री प्रणम्यसागर जी जिस समय हिन्दी अर्थ कर रहे थे, उस समय 10 श्लोक ही उपलब्ध थे, जिसके कारण 10 का अर्थ हुआ है। आगामी संस्करण में ग्यारहवें श्लोक का अर्थ भी दिया जाएगा। तथापि अष्टक में

9-10-11 छन्द भी हों तब भी अष्टक ही कहलाते हैं। आचार्य/मुनि श्री गुणनन्दी द्वारा रचित यह स्तोत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस स्तोत्र के भावों को समझने वाला कोई भी श्रावक प्रतिदिन देवदर्शन किये बिना नहीं रहेगा। आज की तथा कथित पढ़ी-लिखी युवा पीढ़ी भी इसके भावों को समझकर प्रतिदिन देवदर्शन करने लगेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। श्लोक जो छूट गया है-

अद्याष्टकं पठेद्यस्तु, गुणाऽऽनन्दित-मानसः।
तस्यसर्वार्थसंसिद्धि, र्जिनेन्द्र! तव दर्शनात्॥ 11॥

हे भगवन्! मैंने आपका दर्शन आज किया, मेरे दोनों नेत्र सफल हुए। मोक्ष रूपी अक्षय सम्पदा के कारण मात्र आप ही हैं। चूँकि आप संसार सागर के पार उतर गये, मुझे विश्वास है मैं भी तर जाऊँगा। आपके दर्शन से मैंने धर्म-तीर्थों में स्नान कर लिया, मेरा शरीर आज शुद्ध हो गया है। मेरा जन्म मंगल मय हो गया है, अब कोई ग्रह, नक्षत्र मेरा अमंगल नहीं कर सकता। मेरी आत्मा से कषाय सहित आठ कर्मों की अग्नि बुझ गई है। सभी ग्रह सौम्य हो जाने से समृद्धि प्राप्त होगी। मिथ्यात्व कर्म नष्ट हो गया है। सुख की अनुभूति हुई है। मुझे प्रतिभासित हो रहा है कि मेरा स्वरूप भी आपकी तरह केवलज्ञानमय है। आपके दर्शन से आज मैं महापुण्यवान हो गया हूँ। भगवान का दर्शन महापुण्य से होता है, पापोदय से नहीं। भगवान की भक्ति करने से भाग्य बनता है जिससे थोड़े से पुरुषार्थ से ही महान उपलब्धियाँ प्राप्त होने लगती हैं।

10. चतुर्विंशति-तीर्थंकर-स्तुति (आ० माघनन्दि)

आचार्य श्री माघनन्दि कृत संस्कृत में रचित 'चतुर्विंशति-तीर्थंकर-स्तुति' का मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने हिन्दी में अन्वयार्थ और भावार्थ किया है। इस कृति में चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति 16 पद्यों में की गई है।

प्रथम पद्य में चौबीस तीर्थंकरों के हाथों एवं उनके चरणों के नाखुनों की शोभा की तुलना देवों के मुकुटों से प्रकाशमान किरण समूह से की है। 14वें व 15वें पद्य में तीर्थंकरों की विशेषताओं का वर्णन है। सभी तीर्थंकर संसार को अद्वितीय ज्ञान देकर गये हैं। केवल ज्ञान के धारक, मुक्ति के सुख को समझाने वाले, स्वयं हित-अहित का विवेक धारण करने वाले, सम्यग्दर्शन व संयम लब्धि को धारण करने वाले तीर्थंकरो की वन्दना सरल, सरस हृदयग्राही भाषा में की गयी है।

यह स्तुति पुष्पों से बनी माला है। जैसे पुष्पमाला अच्छे रंग के फूलों से सुशोभित होती है उसी प्रकार यह स्तुति अच्छे वर्णों और अक्षरों की रचना से सुसज्जित है। स्तुतिरूपी पुष्पमाला भी माला के सूत्र के समान अधिक गुणों से सहित शोभायमान है। अरिहन्तों की इस स्तुति को जो जीव कण्ठ में धारण करता है वह स्वर्ग में इन्द्र पद पाता है और भविष्य में सिद्धत्व भी प्राप्त करता है।

11. 'संन्यास एषोऽस्तु किमात्मघातः' पर आधारित हिन्दी टीका -

आचार्य श्री ज्ञानसागर विरचित 'संन्यास एषोऽस्तु किमात्मघातः' कृति का मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने हिन्दी अनुवाद किया है। इसमें बताया है कि संन्यास (सल्लेखना) की तुलना आत्मघात से नहीं की जा सकती है।

इस कृति में 8 पद्यों में सल्लेखना व आत्मघात में अन्तर स्पष्ट किया गया है। इसमें प्रत्येक पद्य के अन्तिम चरण में 'संन्यास एषोऽस्तु किमात्मघातः' लिखा है, जिसका अर्थ है 'क्या संन्यास आत्मघात हो सकता है?' कृति के प्रथम पद्य में बताया है कि संन्यास को आत्मघात क्यों नहीं कहा जा सकता? द्वितीय पद्य में बताया है कि किस तरह संयम के साथ शरीर का त्याग करना संन्यास कहलाता है। तृतीय पद्य में माँ जिनवाणी को सम्बोधित करते हुए उन व्यक्तियों के प्रति खेद व्यक्त किया है जो आत्मग्लानि से मर कर शरीर का नाश कर लेते हैं, चतुर्थ पद्य में एक रोगी के शरीर को धन्य तथा अपनी परेशानियों से भागकर आत्महत्या करने वालों को निकृष्ट बताया है। यथा-

सन्यासिना रत्नकरण्डस्य वागंस्य रक्षा क्रियते स्ववश्ये।
नो चेतु रत्नान्यभिरक्षतातः संन्यास एषोऽस्तु किमात्मघातः।।

संन्यास एषोऽस्तु किमात्मघातः, पद्य-5

जिस प्रकार कोई रत्नों की रक्षा करने वाला पुरुष उस पिटारे की भी रक्षा करता है, जिसमें वह रत्न रखे हैं, उसी प्रकार रत्नत्रय को आत्मा में धारण करने वाला संन्यासी देह रूपी पिटारे की रक्षा करता है। रत्नत्रय के लिए शरीर के प्रति मोह को त्याग देना ही सल्लेखना (समाधि) या संन्यास है।

षष्ठ पद्य में आत्मघात कैसे किया जाता है, इस विषय में बताया गया है कि आत्महत्या करने वाला जीव अपने को किसी तलवार आदि शक्ति से मारता है। बिजली या अग्नि से जलकर मरता है। गाड़ी के पहिए के नीचे आकर आत्महत्या करता है और भी अन्य दुःख की विधि को अपनाकर मरण करता है। पत्थर पर गिरकर मरण करता है। निःसन्देह ऐसा

प्राणी पाप में प्रवृत्ति करता है। संन्यास धारण करने वाला धैर्य के साथ विधिपूर्वक अपने प्राण छोड़ता है। आत्मघात हड़बड़ाहट में अविवेक के साथ किया जाता है। इसीलिए यह आत्मघात नहीं है।

अन्तिम दो पद्य में कृतिकार द्वारा उन महान आत्माओं को नमस्कार किया गया है जो सल्लेखना, संन्यास में संलग्न होकर अपने जीवन को अर्पण कर मोक्षमार्ग को प्रशस्त करते हैं। संन्यास इस तरह आत्मघात से भिन्न है।

संन्यास आत्मघात नहीं है आत्मकल्याण का मार्ग है। इसको मुनिश्री ने रूपक, उपमा, दृष्टान्त आदि अलंकारों के माध्यम से समझाया है। बोधगम्य भाषा में इस जटिल विषय को सहज बना दिया गया है।

12. पात्रकेसरी-स्तोत्र

यह आचार्य पात्रकेसरी द्वारा संस्कृत में रचित 50 श्लोकों का स्तोत्र है। इसमें जिनेन्द्र भगवान की स्तुति की गई है। आचार्य पात्रकेसरी ब्राह्मण कुल के थे। इनका समय आ. पूज्यपाद से उत्तरवर्ती और आ. अकलंकदेव से पूर्ववर्ती ईसा की छठी शताब्दी का है। इन्होंने दो ग्रन्थ त्रिलक्षण-कदर्थन तथा जिनेन्द्रगुण स्तुति (पात्रकेसरी स्तोत्र) की रचना की है।

मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने इसकी हिन्दी टीका, अन्वयार्थ एवं भावार्थ सरल, सुबोध भाषा में किया है। जिनेन्द्र भगवान के गुणों का स्तवन यहाँ दृष्टव्य है-

जिनेन्द्र गुणसंस्तुतिस्तव मनागपि प्रस्तुता।
भवत्यखिलकर्मणां प्रहयते परं कारणं ॥
इति व्यवसिता मतिर्मम ततोऽहमत्यादरात्।
स्फुटार्थ-नयपेशलां सुगतः संविधास्ये स्तुतिम्॥......... पात्रकेसरी स्तोत्र पद्य-1

स्तुतिकार ने जिनेन्द्र भगवान की स्तुति करते हुए बताया है कि यदि भगवान् के गुणों की स्तुति अंश मात्र भी विशुद्ध भावों से अच्छी तरह से की जाती है तो वह समस्त कर्मों का नाश करने वाली होती है। इस तरह मेरी बुद्धि में यह दृढ़ निश्चय हो गया है कि आपकी स्तुति से बढ़कर कर्म-क्षय का कोई अन्य कारण नहीं है। इस प्रयोजन से मैं अत्यन्त आदर के साथ, विनय भक्ति से युक्त हो, हे भगवन्! आपकी स्तुति करूँगा। मेरी इस स्तुति के शब्द, अर्थ को स्पष्ट करने वाले और नयविद्या से सुन्दर है। व्यवहार और निश्चय दोनों नयों से अर्थ का निरूपण करने वाली स्तुति की प्रतिज्ञा ली गई है।

13. नियमसार (हिन्दी अनुवाद एवं प्रश्नोत्तर टीका)

कुन्दकुन्द देव विरचित नियमसार की मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने 'हिन्दी अनुवाद एवं प्रश्नोत्तर टीका' की है। नियमसार पर आचार्य श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने तात्पर्यवृत्ति की है एवं आचार्यश्री विद्यासागर जी ने हिन्दी पद्यानुवाद भी किया है।

जो नियम से करने योग्य है, वही नियम है और जो विपरीतता का परिहार हुआ वही सार कहलाता है। नियमसार 12 अधिकारों में विभक्त, 187 गाथाओं में निबद्ध है। आध्यात्मिक दृष्टि से यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र को नियम से मोक्षप्राप्ति का मार्ग बताया है। अत: सम्यग्दर्शन आदि के स्वरूप का कथन करते हुए उसके अनुष्ठान करने एवं मिथ्यादर्शन आदि के त्याग का विधान है। ग्रन्थ के अन्त में 'परिशिष्ट-1' में छहढ़ाला की चौथीढ़ाल प्रश्नोत्तर शैली में वर्णित है तथा 'परिशिष्ट-2' में गाथानुक्रमणिका संलग्न है।

टीका, अन्वयार्थ, टीकार्थ के बाद मुनिश्री ने प्रश्नोत्तर पद्धति से पद्य के सार को सरल भाषा में समझाने का प्रयास किया है। नियमसार का सरलार्थ और प्रश्नोत्तर टीका के सृजन का प्रयोजन स्वकल्याण और परकल्याण की भावना है। नियमसार की गाथा और टीका के भावों की गहराई को समझना, अभ्यास करना, स्वयं अपनी आत्मा को निश्चयनय के चारित्र में दृढ़ करना, उनका उद्देश्य है। यह स्वकल्याण की भावना है। गाथाओं का अक्षरश: अनुवाद, अन्वयार्थ, टीकार्थ और भावार्थ को प्रश्नोत्तर शैली में लिखना उनके परकल्याण के प्रयोजन को पूर्ण करता है। वर्तमान में प्रचलित निश्चय एकान्त के विषम-विष से पाठकों को बचाना भी इस अनुवाद का आनुषागिंक उद्देश्य है। भगवान वासुपूज्य जिनालय बांसवाड़ा (राजस्थान) में इस टीका का लेखन कार्य पूर्ण हुआ है।

14. समयसार का हिन्दी अनुवाद एवं प्रश्नोत्तर टीका

आचार्य कुन्दकुन्द प्रणीत समयसार श्रेष्ठ आधयात्मिक ग्रन्थ है। प्राकृत भाषा में रचित समयसार पर मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने 'आत्मख्याति टीका का हिन्दी अनुवाद' किया है। साथ ही प्रश्नोत्तर शैली में टीका के भावों को जिज्ञासुओं के समक्ष प्रस्तुत किया है। समयसार के इस संस्करण में आचार्य अमृतचन्द्र जी की आत्मख्याति संस्कृत टीकानुसार प्रथम 68 गाथाएं और जयसेनाचार्य की तात्पर्यवृत्ति संस्कृत टीका के अनुसार प्रथम 73 गाथाएँ तथा परमाध्यात्मतरंगिणी टीका तथा आचार्यश्री विद्यासागर जी विरचित हिन्दी पद्यानुवाद भी सम्मिलित है।

समय के अनेक अर्थ है जैसे काल, आत्मा, पदार्थ समूह, सिद्धान्त, आगम अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का सिद्धान्त आदि, परन्तु इस कृति में समय शब्द के दो अर्थ विवक्षित हैं-समस्त पदार्थ और आत्मा। जिस ग्रन्थ में समस्त पदार्थों अथवा आत्मा का सार अभिव्यक्त हो वह समयसार है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में मुनिश्री प्रणम्यसागर प्रणीत कुन्दकुन्द-अष्टक तथा आचार्य कुन्कुन्द देव का परिचय सम्मिलित है। यह रचना भीण्डर (राजस्थान) के पावन वर्षायोग 2014 में पूर्ण की गई है।

15. परीक्षामुख

नन्दिसंघ के प्रमुख आचार्य माणिक्यनन्दि जैन न्यायशास्त्र के महापण्डित थे। इनका परीक्षामुख ग्रन्थ जैन- न्यायशास्त्र का आद्य न्यायसूत्र है। धारानगरी इनकी निवास स्थली थी। न्यायदीपिका में इनका 'भगवान्' के रूप में उल्लेख किया गया है। जैन- न्याय को सरलता से समझाने का श्रेय आचार्य माणिक्यनन्दीजी को प्राप्त है। जिनका न्यायग्रन्थ 'परीक्षामुख' ही सर्वप्रथम न्यायसूत्र ग्रन्थ है।

परीक्षामुख का मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने अन्वयार्थ, सूत्रार्थ एवं सरलार्थ किया है। न्याय का विषय अत्यन्त जटिल और नीरस होता है। अतः न्यायग्रन्थों का पठन-पाठन बहुत ही विरल हो गया है। इन ग्रन्थों को पढ़ने से सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है इसीलिए इनका अध्ययन आवश्यक है।

यह ग्रन्थ भी न्यायसूत्र, तत्त्वार्थसूत्र जैसे ग्रन्थों की तरह सूत्रात्मक शैली में लिखा गया है। इसमें छह अध्यायों में 208 सूत्र हैं। इसमें प्रमाण और प्रमाणाभासों का विशद प्रतिपादन किया गया है। जिस प्रकार दर्पण में हमें अपना प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई देता है, उसी प्रकार परीक्षामुख रूपी दर्पण में प्रमाण और प्रमाणाभासों को स्पष्ट रूप से ज्ञात किया जा सकता है।

'परीक्षामुख' का अर्थ है यह ग्रन्थ यथार्थ पदार्थों की परीक्षा कराने के लिए मुख अर्थात् द्वार के समान है। इसे पढ़े बिना न्याय के अन्य ग्रन्थों में प्रवेश नहीं किया जा सकता है। जिस शास्त्र के द्वारा वस्तु की वास्तविकता का निर्णय किया जाता है, उसे न्यायशास्त्र कहते हैं। यह द्रव्यानुयोग का ग्रन्थ है, इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य सरलता से सभी को जैन न्याय का ज्ञान कराना है। न्याय के बड़े-बड़े ग्रन्थों में प्रवेश करने के लिए यह एक कुञ्जी की तरह है। परीक्षामुख सरल, सरस और गम्भीर अर्थ को लिए हुए विशिष्ट न्यायग्रन्थ है।

इस कृति की रचना मुनिश्री ने वर्ष 2011 के पावन वर्षायोग में घंसौर (सिवनी) में पूर्ण की है।

16. प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रयी–(संयम स्वर्ण महोत्सव वर्ष 2017-18)

हमारा सौभाग्य है कि गौतम गणधर स्वामी की वाणी आचार्य परम्परा से शिष्य-प्रशिष्य के माध्यम से निरन्तर आती हुई आज भी उपलब्ध है। महावीर भगवान की शिष्य परम्परा में छह आवश्यक प्रतिदिन के लिए कहे गये हैं उनमें प्रतिक्रमण पाठ पढ़ना सभी शिष्यों के लिए अनिवार्य है। यह प्रतिक्रमण प्रतिदिन 24 घण्टों में दैवसिक, रात्रिक के भेद से दो बार अनिवार्य रूप से किया जाता है। इसके अतिरिक्त, अष्टमी की आलोचना, चतुर्दशी आदि के भेद से सभी प्रतिक्रमणों का विधान भी है। इन सभी प्रतिक्रमणों के मुख्य रचनाकार श्री गौतम गणधर स्वामी हैं। दैवसिक प्रतिक्रमण, बृहत्प्रतिक्रमण एवं आलोचना के भेद से तीन प्रकार के प्रतिक्रमण पाठ के विभाग हैं। इन तीनों की एकमात्र संस्कृत टीका आचार्य प्रभाचन्द जी ने की है। इस ग्रन्थ की हिन्दी टीका अभी तक उपलब्ध नहीं थी जिसकी पूर्ति पूज्य मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने की है। इस ग्रन्थ में मूल प्राकृत, संस्कृत टीका व हिन्दी टीका दी गई है जो सभी मुनिजनों व श्रावकों के लिए भी परम उपयोगी है।

17. न्यायविनिश्चय

परम पूज्य आचार्य अकलंकदेव द्वारा रचित न्याय का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस पर आचार्य श्री वादिराज द्वारा संस्कृत टीका लिखी गई है। जो दो भागों में 'भारतीय ज्ञानपीठ' से प्रकाशित हुई है। डॉ. महेन्द्र कुमार जैन, न्यायाचार्य ने इन दोनों भागों का सम्पादन किया है। एक हिन्दी अनुवाद ऐलक श्री सिद्धान्तसागर जी का अवश्य प्रकाशित हुआ है जो प्रशंसनीय है। परम पूज्य मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद अन्वयार्थ के साथ किया है।

प्रवचन ग्रन्थ:

1. वारसाणुवेक्खा

'वारसाणुवेक्खा' ग्रन्थ बारह भावनाओं की प्रमुखता से संक्लिष्ट चित्त को धर्मध्यान, शुक्लध्यानमय समाधि और निर्विकल्पता प्रदान करके आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है। इस ग्रन्थ पर आज तक कोई संस्कृत टीका उपलब्ध नहीं थी। मुनि श्री प्रणम्य सागर जी महाराज की यह 'कादम्बिनी टीका' इस ग्रन्थ की सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ टीका है। मुनिश्री ने संस्कृत टीका के अर्थ के साथ-साथ इसका विस्तृत व्याख्यान भी प्रस्तुत किया है जिससे यह ग्रन्थ भव्यजनों के लिए सर्वग्राह्य बन गया है। सर्वव्यापी बनाने के लिए मूलगाथाओं का अंग्रेजी अनुवाद भी है।

कादम्बिनी-टीका की संस्कृत प्रसादगुण-मयी और प्रवाह पूर्ण है, छोटे-छोटे वाक्यों से विषय को सहज बनाया है। इस टीका का हिन्दी अनुवाद भी सरल, सहज, सुबोधगम्य और प्रवाहपूर्ण है। इस ग्रन्थ की अन्यतम विशेषता है कि सामान्यजन भी इसको पढ़कर इसकी विषयवस्तु को ग्रहण कर लेता है। इस टीका की रचना मुनिश्री ने कुण्डलपुर तीर्थक्षेत्र में वीर निर्वाण संवत् 2531 में ग्रीष्मकाल में पूर्ण की। (उज्जैन वर्षायोग-2013)

2. नई छहढ़ाला प्रवचन

नई छहढाला प्रवचन में मूल पद्य के साथ अर्थ, शब्दार्थ, प्रश्नोत्तर रूप में शंका समाधान व विस्तृत व्याख्यान दिया है। छोटी पुस्तक में पद्य के साथ अर्थ, शब्दार्थ, प्रश्नोत्तर रूप में शंका समाधान भी प्रस्तुत किया गया है।

3. परमात्म योग (समाधि तंत्र)

आचार्य पूज्यपाद द्वारा संस्कृत में रचित 'समाधितन्त्रम्' का दूसरा नाम समाधिशतक है। इसमें 105 पद्य में आध्यात्मविषय का बहुत ही सुन्दर विवेचन है।

समाधि का अर्थ ज्ञानीजन अपने-अपने प्रकार से प्रसंगवश करते हैं। इस ग्रन्थ में वे सभी अर्थ संग्रहीत हो गये हैं। समाधि का सीधा-साधा अर्थ-सम अर्थात् छोड़कर, आधि-मानसिक चिन्ता। मानसिक चिन्ता को छोड़कर जो चित्त रहता है वह समाधि में है। कुछ करने की चिंता, कुछ पाने की चिंता, रोग न होने की चिंता, भयभीत मन, आकस्मिक दु:ख न आए और न जाने कितने प्रकार की चिंताएँ जिस चित्त में हैं वह समाधि से युक्त नहीं है। जिसने अपनी आत्मा का स्वरूप नहीं जाना वह तत्त्वज्ञान से विमुख है। तत्त्वज्ञान के बिना व्यक्ति चाहे कितने भी प्राणायाम, जप, पूजा, ध्यान आदि करें, कुछ देर के लिए दु:ख को भूलने के तात्कालिक उपाय हैं, शाश्वत नहीं। इसीलिए नीतिकारों ने कहा है- 'तत्त्वज्ञान विहीनानां दु:खमेव ही शाश्वतम्।' तत्त्वज्ञान से रहित जीवों का दु:ख शाश्वत है। इसलिए समाधितंत्र के सूत्र तत्त्वज्ञान बढ़ाते हैं। हमें किसी विशिष्ट नामधारी परमात्मा से नहीं किन्तु अपनी अन्तरात्मा के उपाय से स्वयं के परमात्मा का दर्शन करना और उसे पाना ही समाधि है। उस समाधि का तंत्र, सिद्धान्त, मार्ग या उपाय समाधितंत्र है।

आचार्यों ने धर्मध्यान और शुक्लध्यान को समाधि कहा है। इसलिए समाधि वह नहीं जो मरते समय होती है, यह वह समाधि है जो जीते जागते करना है। बुढ़ापे में मृत्यु-शय्या पर नहीं किन्तु यौवन के उपवन में विचरते हुए करना है। आत्मज्ञान, तत्त्वज्ञान, सम्यग्ज्ञान, विद्या, सम्यग्बोध, धर्म, स्वभाव, चैतन्य की अनुभूति, चेतना का जागरण, परमात्म-योग-प्रदीप,

न जाने कितने नामों से इसे कहा जा सकता है। स्वयं आचार्य पूज्यपाद ने इस ग्रन्थ में कहा है–'एष योगः समासेन प्रदीपः परमात्मनः।' अतः यह योग संक्षेप में परमात्मा का प्रदीप है। योग अर्थात् जुड़ना। परमात्मा से जुड़ने के लिए दीपक की तरह मार्ग दिखाने वाला यह ग्रन्थ अनुपम है। इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें कहीं भी मताग्रह, हठाग्रह या साम्प्रदायिकता की बात नहीं है। कोई भी भव्य जीव इसे पा सकता है। अपने अज्ञानजनित अनादिकालीन संस्कारों को तोड़ने की अनुपम विधि बताने वाला यह शास्त्र अध्यात्मविद्या की अनुपम धरोहर है। योग, ध्यान, समाधि, शुद्धोपयोग सभी एकार्थवाची हैं। सभी तीर्थंकरों ने स्वयं यही मार्ग अपनाया है।

इस ग्रन्थ पर मंदसौर चातुर्मास में प्रवचन हुए। 'समाधितंत्र' पर मुनिश्री द्वारा सरल एवं मोक्षमार्ग प्रशस्त करने वाले हृदयस्पर्शी प्रवचन सुनने का सुअवसर नगरवासियों को प्राप्त हुआ। जीवन का सही लक्ष्य निर्धारण करने हेतु मन साधने के लिए गुरु वचन-प्रवचन ही एकमात्र उपाय है। 'परमात्म योग' को पढ़कर गुरु-प्रवचनों का लाभ सुधी पाठकों को अवश्य प्राप्त करना चाहिए।

4. अध्यात्म योग (इष्टोपदेश)

आज के वैज्ञानिक एवं मशीनी युग में प्रत्येक व्यक्ति एक मशीन की भांति प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक का समय निकालता है। जिसके कारण से वह शारीरिक रोगों से तो ग्रसित होता ही है साथ ही मानसिक रोगों से भी पीड़ित रहता है। मानसिक रोगों से मुक्ति मिलने पर शारीरिक रोगों से दूर हुआ जा सकता है। मानसिक रोगों से दूर होने की एक मात्र दवा अध्यात्म है। अध्यात्म के नाम पर आज लोग तरह-तरह के योग करते हुए भी देखे जाते हैं और आध्यात्मिक रुचि को बढ़ाने की इच्छा भी रखते हैं। अध्यात्म का सम्बन्ध आत्मा से होता है। अधि+आत्मा=अध्यात्मा। अर्थात् आत्मा को अधिकृत करके, आत्मा को दृष्टि में रखकर जो प्रक्रिया शारीरिक रोग के साथ अपनायी जाती है उसे अध्यात्मयोग कहते हैं।

परम पूज्य आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी एक बहुत महान् सैद्धान्तिक, दार्शनिक एवं व्याकरणाचार्य होने के साथ-साथ आध्यात्मिक महापुरुष थे जिन्होंने 'इष्टोपदेश' नामक महान् आध्यात्मिक ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ की विशेषता है कि कहीं पर भी जैन शब्द का प्रयोग न करते हुए सामान्य व्यक्ति के लिए आध्यात्म में प्रवेश करने की कला सिखाई है। एक श्लोक में लिखा है कि जब व्यक्ति अपने शरीर पर होने वाले परीषहों का भी भान नहीं करता और आत्मा का उपयोग आत्मा में ही निमग्न होता है तब सब प्रकार के बाहरी

कर्मों का आना रुककर पहले बन्धे हुए कर्मों की निर्जरा होने लगती है इसी का नाम अध्यात्म योग है। गृहस्थ श्रावक के लिए अध्यात्म में प्रवेश करने के लिए भी यह इष्टोपदेश ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय है। जो श्रमण हैं उनके लिए समयसार में प्रवेश करने से पहले इस इष्टोपदेश ग्रन्थ से अध्यात्म योगी बनना नितान्त आवश्यक है। इष्टोपदेश के माध्यम से सभी भव्य जीवों का अध्यात्म में प्रवेश हो इसीलिए बिजौलिया अतिशय क्षेत्र पर परम पूज्य मुनिश्री प्रणम्यसागर जी के प्रवचनों का क्रम चला। श्लोकों के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए सुन्दर चित्र भी दिए गए हैं। इन उपदेशों से सभी लाभान्वित हों ऐसी मंगल कामना है।

5. जीवविज्ञान (तत्त्वार्थसूत्र के दूसरे अध्याय पर प्रवचन)

'तत्त्वार्थसूत्र' जैन वाङ्मय का सर्वाधिक लोकप्रिय व कीर्तिमान ग्रन्थ है जिसके दस अध्यायों में सात तत्त्वों की सूत्रात्मक रूप में सारगर्भित व मार्मिक सृजनशीलता है। द्वितीय अध्याय में सृष्टि के समग्र जीवों की निरूपणा विविध रूपों में निबद्ध है। जिसकी सुबोधगम्य विस्तारणा मुनिप्रवर 108 श्री प्रणम्यसागर जी के वैज्ञानिक प्रवचनों में निहित है। अपने अमृतमयी प्रवचनों में मुनिवर अधुनातम जीवन के ताजे वातावरण में घटित जीवन्त घटनाओं का ही उल्लेख करते हैं जिससे सूत्रों का अर्थ व भाव पाठकों के हृदय को संस्पर्श कर सके। इसीलिए ये प्रेरणादायक प्रवचन अत्यावश्यक रूप से श्रोतव्य, ज्ञातव्य व धयातव्य हैं।

मुनिश्रेष्ठ ने प्रसंगानुकूल उपयोग, भाव, आहारक शरीर, निर्वत्ति, कर्मयोग आदि शब्दों को सर्वथा मौलिक व विशद रूप से व्याख्यायित किया है। भावविज्ञान-मनोविज्ञान, द्रव्येन्द्रिय-भावेन्द्रिय, आहारक- अनाहारक आदि शब्दों के पारस्परिक अन्तर को सोदाहरण समझाया है। विविध सूत्रों के अन्तःस्थल को खोलते हुए तत्सम्बन्धी शंकाओं का सम्यक् समाधान प्रस्तुत किया है। आधुनिक मान्यताओं को समक्ष रखकर पारस्परिक मूल्यांकन भी यत्र-तत्र किया है।

द्वितीय अध्याय का श्रीगणेश जीव के भावों की विवेचना से होता है जिसकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्ररूपणा को मुनिश्री ने सुबोधगम्य बनाया है। जीव के पंचविध भावों तथा उनके 53 भेद-प्रभेदों को समझाते हुए सोदाहरण सिद्ध किया है कि जीव के कर्म उनके सद्-असद् भावों की आधारशिला पर जन्म लेते हैं। जिनके अनुसार जीवों को शुभ-अशुभ फल भोगना पड़ता है। जीव के भाव कर्मों के साथ सम्बन्ध रखते हुए किस प्रकार चलते हैं यह जैनदर्शन पढ़कर ही समझ आयेगा अन्यत्र उसका ज्ञान अपेक्षित नहीं है।

दूसरे अध्याय को मुनिश्री ने 'जीवविज्ञान' संज्ञापित किया है जो सर्वथा सार्थक व औचित्यपूर्ण है।

6. लोकविज्ञान (तत्त्वार्थसूत्र के तीसरे व चौथे अध्याय पर प्रवचन)

परम तपोनिधि मुनिवर श्री प्रणम्यसागर जी महाराज ने 'तत्त्वार्थसूत्र' के तृतीय व चतुर्थ अध्याय में वर्णित तीनों लोकों का सुष्ठु चित्रण किया है जो पाठकों के हृदय पर अनायास अंकित हो जाता है। वस्तुतः मुनिश्री के प्रवचनों में विषय की प्ररूपणा, एक सफल सद्‌गुरु की भांति इतनी विशद, स्वच्छ व सबल उद्‌भाषित हो जाती है कि बालबुद्धि श्रोता भी उसकी सम्यक् जानकारी प्राप्त करने में सक्षम हो जाता है।

तृतीय अध्याय में सात नरकों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक, मानसिक व देवकृत दुःख व असाध्य वेदना आदि का कथन किया गया हैं। तत्पश्चात् मध्यलोक, जहाँ हम रहते हैं, उसका वर्णन किया गया है। एक लाख योजन का जम्बूद्वीप है जिसके बहुमध्य में सुदर्शन मेरु है। जम्बूद्वीप के चारों ओर दो योजन का लवण समुद्र, उसके बाद चार योजन का धातकी खण्ड, उसके बाद आठ योजन का कालोदधि समुद्र, उसके बाद आठ योजन का पुष्करार्द्ध द्वीप है। इन ढ़ाई द्वीप तक ही मनुष्य रहते हैं। उसके पश्चात् एक दूसरे को घेरे हुए वलयाकृत असंख्यात द्वीप व समुद्र हैं। अंतिम स्वयंभूरमण समुद्र है। ढ़ाई द्वीप में पर्वतों का, नदियों का, मनुष्यों का व काल आदि का वर्णन किया गया है। सम्पूर्ण मध्यलोक की जानकारी दी गई है।

चतुर्थ अध्याय में उर्ध्वलोक का वर्णन किया गया है। देव चार प्रकार के होते हैं-भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और विमानवासी। उन देवों के भेद-प्रभेद, सुख, लेश्या, आयु, विमानों की संरचना आदि का वर्णन किया गया है। तालिकाओं व चित्रों के माध्यम से विषय को स्पष्ट करने का पूरा प्रयास किया गया है। इस पुस्तक को पढ़कर तीनों लोकों के विषय में बहुत सारी जानकारियाँ मिल जाती हैं जिन्हें हम बहुधा प्राप्त करने के लिए लालायित रहते हैं।

7. मनोविज्ञान (तत्त्वार्थसूत्र के छठे अध्याय पर प्रवचन)

'तत्त्वार्थसूत्र' जैनधर्म का महत्वपूर्ण आगम माना जाता है जिसमें सात तत्त्वों का निरूपण किया गया है। मनोविज्ञान में तत्त्वार्थसूत्र के छठे अध्याय पर मुनिश्री प्रणम्यसागर जी के प्रवचन प्रस्तुत किए गए हैं। छठे अध्याय में अष्टकर्मों के आस्रवों का विवेचन है।

मुनिश्री ने प्रत्येक सूत्र क्यों और किस लिए लिखे, यह बताया है। सूत्र का विषय, उसकी व्याख्या, भाव, अर्थ व सार्थक उदाहरणों से समझाया है।

आस्रव दो प्रकार के होते हैं। एक शुभ आस्रव और दूसरा अशुभ आस्रव। मनुष्य को पापों से बचकर पुण्य का ही आस्रव करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति 108 प्रकार के अशुभ आस्रवों को निरन्तर करता रहता है-मन, वचन, काय से-समरम्भ, समारम्भ, आरम्भ से-कृत, कारित, अनुमोदना से व क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायों द्वारा, इन सभी को परस्पर गुणा करने से 108 भेद बन जाते हैं। मुनिराज महाव्रती होते हैं अत: उनके कर्मों के अशुभ आस्रव रुक जाते हैं।

मुनिश्री ने प्रेरणा दी है कि छठे अध्याय को अवश्य पढ़ना चाहिए और मनन करना चाहिए जिससे अशुभ कर्मों के आस्रवों को ज्ञात करके छोड़ा जा सके। इस अध्याय का अध्ययन करने से भाव शुद्ध होंगे और परिणामों में विशुद्धि बढ़ेगी।

8. व्रतविज्ञान (तत्त्वार्थसूत्र के सातवें अध्याय पर प्रवचन)

'तत्त्वार्थसूत्र' जैनधर्म का सर्वमान्य, गौरान्वित जन-जन-कण्ठाहार है जिसमें दस अध्यायों में सात तत्त्वों की निरूपणा सूत्रात्मक शैली में निबद्ध है। मुनिवर 108 श्री प्रणम्यसागर जी के अनुसार 'तत्त्वार्थसूत्र में आत्मा को परमात्मा बनाने की प्रक्रिया निर्देशित है।' इसके सप्तम अध्याय में विशेषत: कर्मों के शुभास्रवों का सम्यक् प्रतिपादन किया गया है। ये शुभास्रव पञ्च पापों की निवृत्तिरूप व्रत से ही संभावनीय है। 'तत्त्वार्थसूत्र' में व्रत को परिभाषित किया गया है कि पाँच पापों से विरक्ति या दूर हट जाना ही व्रत है। इस अध्याय में व्रतों का विवेचन होने के कारण इसको 'व्रत-विज्ञान' संज्ञा प्रदान की है जो सर्वथा उपयुक्त व समीचीन है।

मुनिश्री जी ने सूत्रों की व्याख्या अत्यन्त सरल शब्दों में की है। व्रत के संदर्भ में उनका व्यक्तव्य है 'संकल्प शक्ति का नाम व्रत है, इसका पालन करने का नाम आत्मविश्वास है।' पापों का परित्याग व इन पञ्च व्रतों में दृढ़ता, स्थिरता या संरक्षण प्रदान करने के लिए भावनाओं का पुन:-पुन: अनुशीलन परमावश्यक है। सर्व ज्ञात है 'भावना भव नाशिनी'। भावना ही पाप-पुण्य, राग-वैराग्य, संसार-मोक्ष आदि का कारण है। अत: प्रत्येक जीव को कुत्सित भावनाओं का परित्याग करके सदा उत्तम भावनाएँ भानी चाहिए।

जैनागमों में प्रत्येक व्रत की 5-5 भावनाएँ निर्धारित की गई हैं। विभिन्न उदाहरणों से मुनिश्री जी ने सिद्ध किया है कि ये आगम-सूत्र हमें जीवन-जीने की शैली बताते हैं। इनको

अपनाकर हम अपना जीवन शान्त व आनन्दित बना सकते हैं। मुनिश्रेष्ठ ने युगीन मॉडर्न-आधुनिक बेटियों के विजातीय विवाह, सर्विस आदि को दु:खदपूर्ण माना है क्योंकि वहाँ जैनधर्म के संस्कार दृष्टिगोचर नहीं होते।

सामान्यतया श्रावक के 12 व्रत होते हैं-5 अणुव्रत, 3 गुणव्रत, 4 शिक्षाव्रत। गुणव्रत अणुव्रतों के वृद्धिकारक होते हैं। शिक्षाव्रत श्रावकों को महाव्रती बनने की शिक्षा प्रदान करते हैं। श्रावकों को जीवन के अन्त में सल्लेखना व्रत का पालन करना चाहिए। व्रतों की परिपालना में अतिचार आदि नहीं होने चाहिए व व्रती को शल्य रहित होना चाहिए।

'तत्त्वार्थसूत्र' में 12 व्रतों के 5-5 अतिचारों से अवगत कराया गया है। अत: 12 व्रतों के 60 अतिचार होते हैं। साथ ही, सम्यग्दर्शन व सल्लेखना के 5-5 अतिचारों से सावधान रहने के लिए कहा गया है। इन सभी अतिचारों का मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने एतावत् विवरण किया है मानों 'जो भाव यहाँ हैं वे अन्यत्र कहीं नहीं है।' मुनिश्री का यह कथन अत्यन्त प्रेरणादायक है- 'यह एक व्रत-विज्ञान है जो आपको मोक्षमार्ग से जोड़ता है। यदि आप शारीरिक और मानसिक रूप से योगी बनना चाहते हैं तो इस सातवें अध्याय का पालन करने के लिए आपको पूरी तरह से प्रयत्न करते रहना चाहिए।'

9. जिंदगी क्या है? (जुलाई 2019)

मुनिप्रवर 108 श्री प्रणम्यसागर जी के प्रवचन आधुनिक संदर्भ में अभिव्यक्त हैं जो उपदेश मात्र नहीं, अपितु मानव-जीवन की यथार्थ संगति के दर्पण हैं तथा बालक-बालिकाओं, युवा-युवतियों व वृद्धजनों के लिए प्रेरणास्पद हैं। इनमें उन विषम पक्षों को उजागर किया गया है जिनके शिकंजे में मानव जाति जकड़ी हुई है तथा हेय-उपादेय से सर्वथा अनभिज्ञ सी है। जो जैसी स्थिति में रहता है वह वैसी ही स्थिति का आदि बन जाता है। अत: जीव को विचार करना चाहिए कि वह किस दशा में परिणमन कर रहा है। ज्ञातव्य है कि यदि वह धर्म की रक्षा करता है तो धर्म ही उसका रक्षक सिद्ध होगा।

प्रत्येक प्राणी अपने कर्मों का भोक्ता है अर्थात् अच्छा करोगे तो अच्छे कर्म सामने आएंगे, बुरा करोगे तो बुरे कर्म आकर घेर लेंगे। अत: दयाभाव रखना चाहिए व अहिंसा का पालन करना चाहिए। मुनिवर ने सच ही कहा है-'इस कलयुग में थोड़ा सा सतयुग का भाव रखोगे तो सुख मिलेगा। यदि कलयुग में कलयुग का भाव रखोगे तो सुख मिलने वाला नहीं है।'

चहुँ ओर घटने वाली तामसी घटनाओं के विषय में विविध कथाओं के माध्यम से संदेश दिया है कि जीवन को सार्थक बनाने का सफल प्रयास करें। मुनिवर पाश्चात्य संस्कृति व जीवन पद्धति के पक्षधर नहीं हैं क्योंकि इनके द्वारा आध्यात्मिक और धर्ममार्ग नष्टप्राय: हो जाता है। उनका कथन है कि–'जो विद्या हमारी संस्कृति का अनादर सिखाएँ, वह कभी भी सुविद्या नहीं हो सकती।' अतएव पाश्चात्य– प्रणाली पूर्ण रूपेण त्याज्य है।

मुनिश्री अपने प्रवचनों में बोलचाल की भाषा को प्रमुखता देते हैं। उनके प्रवचन जैन–अजैन सभी के लिए कल्याणकारी हैं। पुस्तक में दिये गये चित्र प्रेरणास्पद हैं जिससे कृति की उपयोगिता बढ़ गई है। ये प्रवचन पठनीय ही नहीं हैं बल्कि अनुकरणीय हैं–इसी में इनकी सार्थकता निहित है।

10. पंचलब्धि

गोटेगाँव वर्षायोग में ब्रह्मचारी भाईयों के शिक्षण हेतु एक गोष्ठी आयोजित हुई थी। जिसमें पंचलब्धि पर प्रकाश डाला गया। इन्हीं प्रवचनों का संकलन यह कृति है। सन् 2012 में हुए इन प्रवचनों के संकलन में विद्वान ब्रह्मचारी भाईयों के द्वारा किए गए शंका समाधान भी दिए गए हैं।

11. प्रवचनसार का सार

दिल्ली प्रवास के मध्य परम पूज्य मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने प्रवचनसार पर विस्तार से समझाते हुए महत्वपूर्ण प्रवचन दिए। उनका संक्षेप में सार रूप प्रकाशित किया जा रहा है। एक 'आन लाईन' प्रतियोगिता भी प्रवचनसार के ऊपर आयोजित की जा रही है। पहली प्रतियोगिता 1–26 गाथाओं पर हो चुकी है। दूसरी भी शीघ्र ही सम्पन्न होने जा रही है।

अन्य मौलिक कृतियाँ

1. युगदृष्टा (भगवान ऋषभदेव पर उपन्यास)

मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने उपन्यास 'युगदृष्टा' में भगवान् ऋषभदेव के जीवन–चरित्र को सम्यक्‌रीति से प्रस्तुत किया है। इसमें भगवान् ऋषभदेव के पूर्व दस भवों का वर्णन आधुनिक शैली में किया गया है। भावपक्ष व कलापक्ष की दृष्टि से यह उपन्यास जगत् की अमूल्य निधि है। भगवान् ऋषभदेव ने असि, मसि, कृषि, विद्या, शिल्प और वाणिज्य–इन छह कार्यों का उपदेश दिया था तथा इन्द्र के सहयोग से देश, नगर, ग्राम आदि की रचना करवाई थी इसी कारण वे युगस्रष्टा कहलाए।

सर्वप्रथम भगवान् ऋषभदेव के दस भवों का वर्णन पण्डित भूधरदास जी ने अपने 'जैन शतक' ग्रन्थ में किया है। आचार्य श्री जिनसेनस्वामी ने ऋषभदेव के पूर्व भवों का वर्णन आदिपुराण में किया है। यह पुराण विस्तृत एवं विपुल सामग्री को लिए हुए है, इसीलिए प्रणम्यसागर जी ने भगवान के जीवन के पूर्वभवों की आदिपुराण को आधारशिला बनाकर इस लघुकाय उपन्यास युगदृष्टा की रचना की।

इसमें भगवान् ऋषभदेव का सम्पूर्ण जीवन परिचय दिया है। यह 15 शीर्षकों में विभाजित है तथा प्रत्येक शीर्षक को चित्र से दर्शाया गया है। 9 शीर्षकों में भगवान् ऋषभदेव के पूर्व भवों का तथा शेष छह शीर्षकों में भगवान् ऋषभदेव का जीवन-चरित वर्णित है।

आज के व्यस्ततम भौतिकवादी युग में जनसामान्य 'आदिपुराण' जैसे वृहत्काय ग्रन्थों को पढ़ें और जैन धर्म के रहस्य को समझें, इतना समय उनके पास नहीं है। अत: रोचक शैली में जैनधर्म के रहस्य को उद्घाटित करने के उद्देश्य से कवि प्रणम्यसागर ने 'युगदृष्टा' की रचना की है। यह भगवान् ऋषभदेव के महान् जीवन-चरित से परिचय कराता है। इस उपन्यास की भाषा प्रांजल, प्रभावशाली तथा विषय-वस्तु के सर्वथा अनुकूल है।

2. जैन सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य-(भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित)

एक पौराणिक उपन्यास की तरह इसमें सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य का जीवन वृतान्त गुम्फित किया गया है। सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य दिगम्बर दीक्षा धारण करने वाले अन्तिम मुकुटबद्ध सम्राट् थे। अन्तिम श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु से दीक्षित होकर उनके साथ ही दक्षिण की ओर विहार कर गये थे। श्रवणबेलगोला में चन्द्रगिरि पर्वत पर गुरु की सेवा में सलंग्न रहे व उनकी समाधि के पश्चात् वहीं पर 12 वर्ष तक तपस्यारत रहे। आज भी अधिकांश आमजन अपरिचित हैं कि सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य व महामात्य चाणक्य जैन थे और उन्होंने दिगम्बर दीक्षा धारण की थी। यह प्रत्येक श्रावक के लिए पठनीय है।

3. खोजो मत पाओ-2016-(लाइफ मैनेजमेन्ट)

अनोखी प्रतिभा के धनी, संस्कृत, अंग्रेजी, प्राकृत भाषा में निष्णात, अल्पवय में ही अनेक ग्रन्थों की संस्कृत टीका लिखने वाले मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने जनसामान्य के हितकारी "खोजो मत पाओ" "लाइफ मेनेजमेंट" पुस्तक को लिखकर सभी को अपना जीवन जीने की एक नई दिशा दी है। मुनिश्री ने जीवन को स्वस्थ, आनन्दमय एवं दीर्घायु बनाने के लिए भगवान महावीर के सिद्धान्तों को गहराई से चिन्तन करके सरल भाषा में संजोया है जो कि उनके "गहरे और सरल" व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित करता है।

कैसे चलें, कैसे चेष्टा करें, कैसे बैठें, कैसे शयन करें, कैसे भोजन करें और कैसे बोले, जिससे पाप का बन्ध न हो। भगवान ने इनका उत्तर बड़े ही सरल शब्दों में दिया कि-उपर्युक्त छहों कार्य यत्न पूर्वक करो। यत्न का अर्थ होता है सावधानी पूर्वक। इन छह प्रश्नोत्तर में ही जीवन का पूर्ण प्रबन्धन है, पूर्ण जीवन शैली है। इस कृति में इसी को व्याख्यायित किया गया है जिसमें जीवन का सम्पूर्ण प्रबन्धन समा गया है। इस कृति के अध्ययन से, मनन से व अनुपालन से जीवन निश्चित ही सुखी एवं शान्तिमय बनेगा, ऐसा विश्वास है।

4. आलेख पथ

परम पूज्य मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने अनेक खोजपूर्ण एवं शोधपूर्ण लेखों का लेखन किया है। प्रस्तुत पुस्तक 'आलेख पथ' में ऐसे ही 20 लेखों का संग्रह किया गया है। इनमें से कई लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। विभिन्न विषयों पर लिखे गये ये लेख पठनीय व मनन योग्य है। यह पुस्तक स्वाध्याय प्रेमियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। संग्रहीत 20 सैद्धान्तिक आलेख हैं-

१. षट् आवश्यक: आज क्यों आवश्यक?
२. श्री पद्मपुराण: एक प्रामाणिक कृति।
३. आचार्य विद्यासागर-एक जीवन अतिशय।
४. वीरशासन जयन्ती: एक अद्वितीय महापर्व।
५. वैशाली-जैसी सुनी जैसी देखी वैसी।
६. दिव्यध्वनि की दिव्यता।
७. णमो लोए सव्व अरिहंताणं ।
८. शुभ भाव कर्मक्षय का कारण है।
९. अनन्त सुख एक अनुचिन्तन।
१०. केवली भगवान के क्षुधादि परीषहों का सद्भाव है ?
११. आचारसार पर्यालोचन।
१२. ईहादि तीन ज्ञान सर्वथा इन्द्रियजन्य नहीं होते।
१३. द्रव्य और भाव स्त्री वेद के वाचक शब्द।
१४. करुणाभाव मोह का चिह्न नहीं है।
१५. कषायों की अवधारणा।
१६. क्या संयम और चरित्र भिन्नार्थ हैं ?

१७. सम्यग्दर्शन दुर्लभ है, सम्यग्दृष्टि नहीं।

१८. पर्याप्ति और प्राण में कारण-कार्य-व्यवस्था: एक अनुचिन्तन।

१९. क्या मनुष्यों की संख्या 29 अंक प्रमाण है ?

२०. क्या श्रुतसागरजी प्रामाणिक हैं ?

5. समयसार का ज्ञानी आत्मा कौन?

प्रस्तुत कृति न तो कोई ग्रन्थ है और न ही शास्त्र, अपितु कतिपय लेखों से बनी पुस्तिका है। आज के समय में आध्यात्म ग्रन्थों का पठन-पाठन बहुत ही आवश्यक है। आध्यात्म प्रत्येक आत्मा के लिए संजीवनी है। जीव जब तक अपनी प्रवृत्ति ज्ञानदृष्टि की ओर नहीं करेगा तब तक वह आत्मज्ञान से अपरिचित ही रहेगा। मनुष्य पर्याय को सार्थक बनाने के लिए चार बातें हैं-

(1) आगम का ज्ञान-अर्थात् चारों अनुयोगों का अच्छा ज्ञान।

(2) तर्क-युक्ति, व्याप्ति आदि के द्वारा साध्य की सिद्धि के उपाय जानना।

(3) परम गुरु का उपदेश-निर्ग्रन्थ आचार्य, अध्यात्म, श्रमणों का उपदेश ग्रहण करना।

(4) स्वसंवेदन प्रत्यक्ष-इसके बाद स्वसंवेदन ज्ञान से अच्छी तरह विचार कर अनुभव करना।

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्किज्ज छलं ण घेत्तव्वं॥ समयसार गाथा -5

उपरोक्त गाथा की टीका में आचार्यों ने इन तथ्यों का उल्लेख किया है। कभी भी किसी को भी उपदेश देते समय इन चार बातों का होना अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा वह उपदेश स्व और पर दोनों के लिए घातक सिद्ध होता है।

समयसार की टीका करने वाले दो प्रमुख आचार्य श्री अमृतचन्द्र जी व आचार्य श्री जयसेन जी की टीकाओं को पढ़कर ही सम्यक् अध्येता बना जा सकता है। इसी प्रकार आचार्य योगीन्दु देव द्वारा रचित टीका 'परमात्मप्रकाश' ग्रन्थ है। मुनिश्री द्वारा 'परमात्मप्रकाश' ग्रन्थ का स्वाध्याय करते समय लिखे गए लेख एक साथ यहाँ निबद्ध हैं। गृहस्थ साधक, सुधी जनों के लिए ये लघु आलेख प्रामाणिक सन्दर्भों के साथ यहाँ प्रस्तुत हैं-

1. क्या गृहस्थ वीतराग सम्यग्दृष्टि होता है?
2. गृहस्थ धर्म क्या है?

3. वीतराग सम्यग्दर्शन का स्वरूप
4. निर्विकल्प समाधि का स्वरूप
5. अज्ञानी और गूढ़ात्मा कौन?
6. समयसार का ज्ञानी आत्मा कौन?

आचार्य योगीन्दु देव द्वारा रचित 'परमात्मप्रकाश' टीका ग्रन्थ उच्चकोटि का परम आध्यात्मिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की संस्कृत टीका आत्मा सम्बन्धी कई भ्रान्तियों को दूर करती है।

6. अन्तर्गूंज-(भजन व हाइकू) नरसिंहपुर, वर्षायोग, नवम्बर 2010

यह प्रिय गीतों एवं हाइकू काव्यों का सुन्दर संग्रह है। बदलते भावों के प्रवाह में अनेक स्मृतियों, अनुभवों, घटनाक्रमों के स्पर्श से मन के सरोवर में शब्दों के कमल खिलते हैं। वे गीत, गजल, कविता या मुक्तकों में माला रूप अपनी सुगन्ध बिखेरते हैं। अन्तर्गूंज ऐसी ही रचना है। गीत, गजल, भजन और हाइकू जैसी अनेक विधाओं की समग्रता इस संग्रह की विशिष्टता है। आध्यात्म की पवित्र भावनाओं से निसृत शब्द और विषय वस्तु का ऐसा संगम अन्यत्र दृष्टिगत नहीं होता।

निश्चित रूप से यह रचना-संग्रह पाठकों के मन मस्तिष्क में एक अलग पहचान निर्मित करेगा एवं समाज में छिपी अनेक बुराइयों को दूर करते हुए मनुष्यता का सच्चा संदेश जारी करेगा।

7. लहर पर लहर (कविता संग्रह)

परम पूज्य मुनिश्री प्रणम्यसागर जी द्वारा रचित 'लहर पर लहर' कृति में 106 कविताओं का संग्रह है। वस्तुतः कविता मनुष्य की चेतना में निहित बौद्धिक संवेदनशीलता का प्रतीक है।

प्रत्येक मनुष्य का मस्तिष्क एक समुद्र की तरह है, जिसमें भावों की लहरों का अनवरत् आना और जाना जारी रहता है। इन साधारण लहरों में से कुछ लहरें ऐसी होती हैं, जो अपने साथ बहुमूल्य मोती ले आती हैं। 'लहर पर लहर' काव्य-संग्रह में कवि ने मस्तिष्क में उठने वाली लहरों द्वारा लाए गए ऐसे ही चुनिन्दा मोतियों को सुन्दरता से सजाया है।

मुनिश्री की यह रचना ही जीवन की विसंगतियों, अनियमितताओं में मनुष्य की अनवरत संघर्षमयी चेष्टाओं को देख पाती है। उनके आन्तरिक कष्टों व दुखों को देख पाती है।

मुनिश्री की रचनाएँ (कविताएँ) आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक जगत् के अपेक्षित मूल्यों का अवलोकन करती हैं। सटीक शब्द-संयोजन से दिशा-बोध करती हुई अपनी पीड़ा का परिहार करती है। आपकी प्रत्येक कविता में सहज और सरल भाषा के साथ जीवन के गूढ़ रहस्य उद्घाटित करने का सार्थक प्रयास दिखाई देता है। विविध भावों और विषयों पर केन्द्रित ये कविताएँ हृदय-स्पर्शी हैं।

8. बेटा (शिक्षाप्रद सूक्तियाँ)

ये शिक्षाप्रद सूक्तियाँ अभी कलेण्डर के रूप में प्रकाशित हुई हैं। पुस्तक का रूप अभी इसने नहीं लिया है।

9. अर्हं कलेण्डर

365 दिन की 365 सूक्तियाँ हिन्दी और अंग्रेजी में संकलित हैं जो आज की पीढ़ी को सद्विचारों की ओर अग्रसर करने के लिए एक लक्ष्य हैं।

10. नई छहढाला- (चैत्र शुक्ल एकम्, 2014 को बाँसवाड़ा जिले के कलिंजरा ग्राम में श्री आदिनाथ प्रभु के जिनमन्दिर जी में पूर्ण हुआ।)

मुनिराज करुणा पूर्वक कहते हैं-कब तक गृहबन्धन को धारण करोगे, कब ममत्व को त्यागोगे, यह मनुष्य भव बार-बार नहीं मिलने वाला। जब तक मनुष्य स्वस्थ रहता है तब तक उसे धर्म की चिंता नहीं रहती। अस्वस्थ होता है तब धर्म याद आता है, भगवान याद आते हैं। प्रस्तुत कृति में श्रावकों के ज्ञानवर्धन के साथ ही मोक्षमार्ग पर आगे बढ़ने की प्रेरणा की गई है। विषय वस्तु इस प्रकार है-

पहली ढाल में चार गतियों के जीवों के क्षुद्र-भवों का वर्णन, प्रत्येक पर्याय की दुर्लभता एवं पंच परावर्तन का वर्णन है। द्वितीय ढाल में मिथ्यादर्शन, सम्यग्दर्शन के आठ अंग एवं व्यवहार-निश्चय सम्यग्दर्शन का स्वरूप दर्शाया है। तृतीय ढाल में चौदह गुणस्थानों का विशद वर्णन है। चतुर्थ ढाल में सम्यग्ज्ञान का वर्णन है। जिसमें नयों एवं सप्तभंगों को समझाया गया है। पंचम ढाल में मुनिधर्म का वर्णन है। छठी ढाल में श्रावक धर्म के अष्ट मूलगुण एवं ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन है।

नई छहढाला (प्रवचन) में मूल पद्य के साथ अर्थ, शब्दार्थ, प्रश्नोत्तर रूप में शंका समाधान व विस्तृत व्याख्यान दिया है। छोटी पुस्तक में पद्य के साथ अर्थ, शब्दार्थ, प्रश्नोत्तर रूप में शंका समाधान भी प्रस्तुत किया गया है।

चैत्र शुक्ल एकम्, 2014 को बॉसवाड़ा जिले के कलिंजरा ग्राम में श्री आदिनाथ प्रभु के जिनमन्दिर जी में यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ है।

11. लक्ष्य (जीवन्धर चरित्र)–भीण्डर वर्षायोग 2014

जीवन्धर कुमार के जीवन चरित को इस लघुकाय पुस्तक में बाल सुलभ शैली में संजोया गया है। जैनदर्शन की सबसे बड़ी विशेषता है कि कथा-कहानियों में काल्पनिकता नहीं अपितु मोक्षगामी महापुरुषों के जीवन चारित्र का वर्णन किया जाता है। यह समीचीन ज्ञान देने वाला व जीवन को सही दिशा प्रदान करने वाला होता है। आवश्यकता है कि बच्चों को सरलता व कथा पर कथा (पूर्व जन्म की कथाओं का वर्णन) कहने की बहुलता से बचकर रोचकता से कथानक प्रस्तुत किया जाये। कथानक सम्बन्धी प्रश्न-उत्तर करके बच्चों का मौलिक चारित्र बढ़ाया जाए, इसी भावना से यह कथानक इस नई विधा के साथ रचा गया है।

आचार्य वादीभसिंह ने प्रियपात्र जीवन्धर के चरित्र-चित्रण के लिए दो उच्च कोटि के ग्रन्थ- 'क्षत्रचूडामणि' व 'गद्य चिन्तामणि' की रचना की है जो कि सभी साहित्य प्रेमियों को अवश्य पढ़ने चाहिए। परम पूज्य प्रणम्यसागर जी ने भी पात्रता देखकर रोचक शैली में निबद्ध किया है। कृति सभी के लिए पठनीय है। इसके कई संस्करण छपे हैं।

12. अर्हम् दोहावली

यह एक लघुकाय पुस्तक है जिसमें मुनिश्री प्रणम्यसागर जी द्वारा रचित 112 दोहे निबद्ध किये गये हैं। दोहों का हिन्दी अनुवाद भी दिया गया हैं। इसमें पंच परमेष्ठी, संयम, दसलक्षण धर्म, निजस्वरूप, चेतन, मन, लेश्याओं आदि के विषय में वर्णन करते हुए आत्मा को राग-द्वेष, मोह, कषाय को दूर करके पावन और पवित्र बनाने की प्रेरणा की गई है।

13. मुनिसुव्रतनाथ विधान एवं चालीसा (2018 दिल्ली)

भगवान् मुनिसुव्रत विधान एवं चालिसा की सुन्दर रचना सन् 2018 में दिल्ली प्रवास काल में सम्पन्न हुई। आजकल पूजन विधान आदि के माध्यम से श्रावक-श्राविकाएं भक्ति में अग्रसर हो जाते हैं। इसी भावना को धयान में रखते हुए मुनिराज ने इस विधान की सुन्दर रचना की है। भगवान के चालीसा का पाठ भी उत्साह पूर्वक किया जाता है।

14. महामह नन्दीश्वर विधान (11 मार्च 2019, दिल्ली)

भक्ति का सम्बन्ध भावों से है जिसमें सांसारिक प्रयोजन न होते हुए भी सभी समस्याओं का समाधान प्राप्त होता है। दु:खों के क्षय के लिए, कर्मो के क्षय के लिए, बोधि की प्राप्ति के लिए, सुगति के गमन के लिए, समाधिमरण के लिए और जिनेद्रदेव के गुणों रूपी सम्पत्ति के लिए भक्ति सशक्त माध्यम है-ऐसा आचार्य कुन्कुन्ददेव ने कहा है।

परम पूज्य मुनिश्री प्रणम्यसागर जी द्वारा रचित यह 'महामह नन्दीश्वर विधान' त्रिभाषात्मक (प्राकृत, संस्कृत व हिन्दी) है। नन्दीश्वर द्वीप में 52 जिनमन्दिर हैं। प्रत्येक दिशा में 13-13 जिनमन्दिर हैं। एक दिशा में एक अञ्जनगिरि, चार दधिमुख व आठ रतिकर-इस प्रकार 13 जिनालय होते हैं। प्रत्येक जिनालयों में 108-108 जिनबिम्ब होते हैं। सभी जिनालय, जिनबिम्ब आदि रचनायें अकृत्रिम हैं। अनादि हैं। शास्वत हैं। आषाढ, कार्तिक और फाल्गुन मास के अन्त 8 दिनों में अर्थात् अष्टान्हिक पर्वो में चारों निकाय के भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव पूजन करने के लिए नन्दीश्वर द्वीप जाते हैं। ये चारों प्रकार के देव चारों दिशाओं में क्रम से 8 दिन तक निरन्तर पूजा करते रहते हैं।

इस विधान में कुल 5616 अर्घ हैं। आठ दिन में 8 पूजाएं हैं। एक दिशा में पहले दिन 108×5 = 540 अर्घ व दूसरे दिन 108×8 = 864 अर्घ, इस प्रकार 13 जिनालयों के जिनबिम्बों की पूजन 2 दिन में और 52 जिनालयों की पूजन 8 दिन में पूर्ण होगी। विशेषता यह है कि मुनिराज जी ने इन पूजाओं में भगवान् के गुणों का, देवों के विमानों का, शील के 18000 भेदों का, 363 प्रकार के मिथ्यामतों का, 23 प्रकार की पुद्गल वर्गणाओं का, चौबीस ठाणों का, कर्म प्रकृतियों का, जिनसहस्रनाम का, तत्त्वार्थसूत्र के सूत्रों का, गणधरों, चक्रवर्तियों, वासुदेव आदि के नामों का वर्णन व अर्घावली दी है। इस तरह इस महामह विधान में चारों अनुयोगों का वर्णन है। जिसे जिनदर्शन का अल्प भी ज्ञान है उस भव्य जीव को इसमें अत्यन्त आनन्द आयेगा। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान की वृद्धि के साथ सम्यक् चारित्र की विशुद्धि भी प्राप्त करेगा। इस मंगल कामना से इस विधान की रचना मुनिश्रेष्ठ श्री प्रणम्यसागर जी द्वारा हुई है।

अष्टान्हिक पर्व अनादि निधन हैं। इस पर्व में नन्दीश्वर द्वीप की पूजन होनी चाहिए। अपनी सुविधा व रुचि अनुसार इस विधान को हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न करके पुण्यार्जन करना चाहिए।

पद्यानुवाद

1. कल्याणमन्दिर स्तोत्र का हिन्दी पद्यानुवाद

आचार्य कुमुदचन्द्र द्वारा रचित 'कल्याण-मन्दिर स्तोत्र' अर्हद् भक्ति की अपूर्व धारा को बहाने वाला स्तोत्र है। आचार्य कुमुदचन्द्र के दीक्षा के पूर्व का नाम सिद्धसेन था। ये कवि व दार्शनिक के रूप में प्रसिद्ध हुए। श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनों ही परम्पराएँ इन्हें अपना-अपना आचार्य मानती हैं। इनके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि इन्होंने उज्जयिनी के महाकाल मन्दिर में 'कल्याण-मन्दिर स्तोत्र' द्वारा रूद्र-लिंग का स्फोटन कर पार्श्वनाथ का बिम्ब प्रकट किया था और विक्रमादित्य राजा को सम्बोधित किया था।

मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने 'कल्याण मन्दिर स्तोत्र' का हिन्दी पद्यानुवाद सहित विधान की रचना नवीन रूप में प्रस्तुत की है। यह अतिशय पूर्ण एवं भावगर्भित भक्ति की श्रेष्ठ रचना है। इस स्तोत्र के समस्त काव्य अत्यन्त भक्ति से ओत-प्रोत एवं समस्त दुखों का निवारण तथा मन को पवित्र करने वाले हैं। इस स्तोत्र का दूसरा नाम पार्श्वनाथ स्तोत्र भी है। 'कल्याण मन्दिर' शब्द से प्रारम्भ होने के कारण इसे 'कल्याण मन्दिर स्तोत्र' भी कहा जाता है।

इस स्तोत्र में 44 पद्य हैं। यह स्तोत्र अत्यन्त सरस और भावमय है। प्रत्येक पद्य में भक्ति रस का प्रवाह है।

मुनिश्री ने वर्ष 2015 में उज्जैन के पावन वर्षायोग में हिन्दी पद्यानुवाद सहित 'कल्याण मन्दिर स्तोत्र विधान' की रचना नवीन रूप में पूर्ण की है।

2. मंगलाष्टक

मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने मंगलाष्टक के हिन्दी पद्यानुवाद की सुन्दर रचना की है। 'कल्याण मन्दिर स्तोत्र विधान' के प्रारम्भ में भी यह रचना दी गई है। नाम के अनुसार इसमें सभी के मंगल की कामना की गई है।

3. माघनन्दि कृत अभिषेक पाठ

मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने परम पूज्य आचार्य माघनन्दि कृत अभिषेक पाठ का हिन्दी पद्यानुवाद किया है। रचना अति सुन्दर है। लय के साथ पढ़ने में मन भक्ति से जुड़ जाता है।

4. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय

आचार्य अमृतचन्द्रसूरि विरचित 'पुरुषार्थसिद्ध्युपाय' अनेक श्रावकाचारों में अनूठी कृति है। श्रावक व श्रमण का पथ प्रदर्शक इस अद्‌भुत ग्रन्थ में मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि का मार्ग निरूपित है। इसमें आत्मा की उन्नति के लिए रत्नत्रय रूपी तीन सोपान वर्णित हैं। यह सात अधिकारों में विभक्त 226 श्लोकों में आर्या छन्द में निबद्ध है। इसमें रत्नत्रय, सल्लेखना एवं प्रसंगवश सकलचारित्र धर्म का वर्णन है। सकलचारित्र के व्रतों के अन्तर्गत हिंसा और अहिंसा का अत्यन्त सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है।

मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने इस कृति का संस्कृत 'मंगलाटीका' एवं दोहानुवाद किया है। प्रस्तुत टीका-कृति के पृष्ठ में अर्द्धभाग में मूल आर्या छन्द और उसकी मुनिश्री वर्णित मंगलाटीका है। शेष अर्ध भाग में इनका हिन्दी अनुवाद है जो उत्थानिका, अन्वय, अन्वयार्थ, टीकार्थ शीर्षकों में समाहित है। प्रत्येक पद्य की व्याख्या का यही क्रम है। कहीं-कहीं विशेषार्थ भी लिखा गया है। अपेक्षित शंका-समाधान टीकार्थ में ही समाहित है।

परिशिष्ट में व्याकरणिक सूत्र-सूची, उद्धृत सूची तथा श्लोक अनुक्रमणिका भी संकलित है। इस टीका की रचना मुनिश्री ने रामटेक (महाराष्ट्र) में वर्ष 2004 में पूर्ण की थी।

5. प्रश्नोत्तर रत्नमालिका-(नीति पथ) अप्रैल 2014

राजर्षि अमोघवर्ष मुनिराज द्वारा प्रश्नोत्तर शैली में रचित यह लघुकाय ग्रन्थ है। मात्र 29 श्लोक हैं जो आर्या छन्द में लिखे गए हैं। निबद्ध प्रश्न 63 हैं। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर साथ-ही-साथ है, इसी विधा के कारण यह ग्रन्थ सबके लिए प्रिय है। मंगलाचरण के अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं जो मात्र जैन धर्म के लिए हो। जैन-अजैन सभी के लिए व्यावहारिक जीवन में उपयोगी प्रश्न इस ग्रन्थ में हैं जो नैतिक आचरण के उत्थान के लिए दीपस्तम्भ के समान है। मुनिश्री ने श्लोक का अन्वयार्थ, संस्कृत टीका, विवेचन और पद्यानुवाद करके इस कृति को सर्वग्राह्य बनाने का सफल प्रयास किया है।

जिज्ञासु जन इस कृति से नीतिज्ञ बनें और नैतिक चरित्र प्राप्त होवे-इस भावना से नीतिपथ की रचना की गई है। यह कृति मुनिश्री ने नरसिंहपुर के पावन वर्षायोग में वर्ष 2010 में पूर्ण की थी।

6. श्री तत्त्वार्थसूत्र मण्डल विधान

'तत्त्वार्थसूत्र' जैन दर्शन का नवनीत है। मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने तत्त्वार्थसूत्र की नवयोजना, तत्त्वार्थसूत्र मण्डल विधान का हिन्दी पद्यानुवाद एवं तत्त्वार्थसूत्र पूजन की रचना की।

प्रथम अध्याय से दशम अध्याय तक 357 सूत्रों की पूजन, पद्यानुवाद एवं अर्घ्य की रचना है। अन्त में जयमाला एवं सरस्वती-स्तवन, विद्या गुरु स्तवन, स्थान-परिचय, समय-परिचय एवं क्षमा याचना के साथ 102 पृष्ठों में कृति पूर्ण होती है। मुनिश्री ने इस कृति को वीर निर्वाण संवत् 2523 (ई. सन् 1997) में, अक्षय तृतीया को सिद्धवरकूट में पूर्ण किया।

नदी नर्मदा के तीर पे, 'कूट सिद्धवर' धाम।
शुद्ध सिद्ध के पद नमूँ, छूटे अघ की घाम॥
रागद्वेष पन पाप तज, उपयोगा द्वय लीन।
रत्नत्रय को धार के, वीर महोत्सव कीन॥
तीज शुक्ल बैशाख की, अक्षय तिथि महान।
पद्यमयी अनुवाद कर, किया निज निधि ज्ञान॥

श्री तत्त्वार्थसूत्र मण्डल विधान, पृष्ठ 102

7. पात्रकेसरी स्तोत्र

यह आचार्य पात्रकेसरी द्वारा संस्कृत में रचित 50 श्लोकों का स्तोत्र है। इसमें जिनेन्द्र भगवान की स्तुति की गई है। आचार्य पात्रकेसरी ब्राह्मण कुल के थे। इनका समय आ. पूज्यपाद से उत्तरवर्ती और आ. अकलंकदेव से पूर्ववर्ती ईसा की छठी शताब्दी का है। इन्होंने दो ग्रन्थ त्रिलक्षण-कदर्थन तथा जिनेन्द्रगुण स्तुति (पात्रकेसरी स्तोत्र) की रचना की है।

मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने इसकी हिन्दी टीका, अन्वयार्थ एवं भावार्थ सरल, सुबोध भाषा में किया है। जिनेन्द्र भगवान के गुणों का स्तवन यहाँ दृष्टव्य है-

जिनेन्द्र गुणसंस्तुतिस्तव मनागपि प्रस्तुता।
भवत्यखिलकर्मणां प्रहयते परं कारणं ॥
इति व्यवसिता मतिर्मम ततोऽहमत्यादरात्।
स्फुटार्थ-नयपेशलां सुगतः संविधास्ये स्तुतिम्॥........ पात्रकेसरी स्तोत्र पद्य-1

स्तुतिकार ने जिनेन्द्र भगवान की स्तुति करते हुए बताया है कि यदि भगवान् के गुणों की स्तुति अंश मात्र भी विशुद्ध भावों से अच्छी तरह से की जाती है तो वह समस्त कर्मों का नाश करने वाली होती है। इस तरह मेरी बुद्धि में यह दृढ़ निश्चय हो गया है कि आपकी

स्तुति से बढ़कर कर्म-क्षय का कोई अन्य कारण नहीं है। इस प्रयोजन से मैं अत्यन्त आदर के साथ, विनय भक्ति से युक्त हो, हे भगवन् ! आपकी स्तुति करूँगा। मेरी इस स्तुति के शब्द, अर्थ को स्पष्ट करने वाले और नयविद्या से सुन्दर है। व्यवहार और निश्चय दोनों नयो से अर्थ का निरूपण करने वाली स्तुति की प्रतिज्ञा ली गई है। मुनिश्री जी ने इसका सुन्दर पद्यानुवाद किया है।

8. श्री वर्धमान स्तोत्र

परम पूज्य मुनिश्री प्रणम्यसागर जी द्वारा रचित 'श्री वर्धमान स्तोत्र' 64 छन्दों में निबद्ध संस्कृत भाषा का अद्वितीय भक्तिपरक काव्य है। मुनिश्रेष्ठ ने अपने काव्य कौशल से उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, अनुप्रास आदि अलंकारों का प्रयोग करके इस स्तोत्र की रचना की है। 'श्री वर्धमान स्तोत्र' में भगवान् वर्धमान की स्पष्ट और एकाग्र उपस्थिति है। इसके लिए कवि मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने अपनी भक्तिपरकता में महावीर के विभिन्न नामों तथा उनके जीवन की घटनाओं का संक्षिप्त लेकिन प्रत्यक्ष उपयोग किया है। चन्दना का महत्वपूर्ण घटनाक्रम का वर्णन भी अद्वितीय ढ़ंग से प्रस्तुत किया गया है। यह स्तोत्र न केवल भक्ति और अनुभूति की तीव्रता की दृष्टि से अपितु अभिव्यक्ति कौशल की दृष्टि से भी स्तुत्य है।

मैं आशा करता हूँ कि यह स्तोत्र जन-जन का कण्ठाहार बनेगा व भव्य जीवों में भक्तिभाव जागृत कर उन्हें वर्धमान भगवान् जैसा बनने की प्रेरणा दे सकेगा। वर्तमान शासन नायक तीर्थंकर वर्धमान के इस स्तोत्र का लाभ सभी भव्य आत्माओं को मिल सके इस भावना से इसका हिन्दी अनुवाद भी विद्वान लेखक सिद्धहस्त कवि मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने किया है।

9. उपयोग शतकम्

आत्मा का स्वभाव उपयोग है। उस उपयोग की शुद्धता व अशुद्धता का ज्ञान प्रत्येक भव्य जीव को होना चाहिए। उपयोग की शुद्धता के लिए जब कोई जीव प्रयास करता है तो उसके सामने कई प्रश्न उठ खड़े होते हैं। उन सब जिज्ञासाओं का समाधान करने का प्रयास इस 'उपयोग शतक' कृति में किया गया है। गृहस्थ श्रावक हो या श्रमण समुदाय सभी के लिए इस कृति के माध्यम से साधना का सोपान बढ़ेगा।

वर्तमान में प्रचलित अनेक एकान्त मान्यताओं का निरसन भी इस कृति में किया गया है। व्यवहार नय की तात्कालिक उपादेयता, आदरणीयता कैसे होती है, यह कृति के

अध्ययन से स्पष्ट होगा। इस कृति के अन्त में ध्यान, योग के लिए आवश्यक तथ्य और अनुभूति का भी वर्णन है। पाठकगण इस कृति से क्या लाभ ले पायेंगे यह तो उनके ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम पर निर्भर करेगा। मुनिवर श्री प्रणम्यसागर जी ने सभी के उपकारार्थ इन श्लोकों का हिन्दी अन्वयार्थ, अर्थ, विशेषार्थ एवं दोहानुवाद करके इस कृति को अत्यन्त उपयोगी बना दिया है। 107 श्लोकों में निबद्ध यह कृति सभी भव्यजनों के हित का कारण बनेगी ऐसी भावना है।

यह कृति रेवाड़ी वर्षायोग 2017 में पूर्ण हुई।

अंग्रेजी भाषा में

1. Fact of Fate

"Fact of Fate" अर्थात् 'भाग्य का सच' यह मुनिश्री का अंग्रेजी भाषा में मौलिक लेख है। नकारात्मक सोच वाला व्यक्ति भाग्य को दोष देता है और सकारात्मक सोच वाला व्यक्ति भाग्य को धन्यवाद देता है। सामान्य व्यक्ति भाग्य से क्या अपेक्षा रखता है, इन्हीं बातों को समझाते हुए मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने इस लेख में यह संदेश दिया है कि हमारे पास पाँच इन्द्रियाँ हैं, एक स्वस्थ मस्तिष्क है, इसीलिए हम सभी प्राणियों से श्रेष्ठ हैं।

हम अपने भाग्य के निर्माता स्वयं हैं, यही भाग्य का सच है। इस सन्दर्भ में उन्होंने कुछ उदाहरण दिए हैं। व्यक्ति के पास जो वस्तु नहीं होती उसी के अभाव को भाग्य मान लेता है, जैसे यदि व्यक्ति कष्टों से पीड़ित है तो उसी के समाधान को भाग्य मान लेता है।

प्रत्येक व्यक्ति के मन में यह प्रश्न रहता है कि भाग्य का सच क्या है? इसका उत्तर कहीं नहीं मिलता, क्योंकि जैसे व्यक्ति से पूछोगे तो वैसा ही उत्तर मिलेगा। उदाहरण के लिए यदि आप रोगी व्यक्ति से पूछोगे तो उत्तर है-रोग का ठीक होना। बेरोजगार से पूछने पर, रोजगार पाना। किसी धनवान व्यक्ति से पूछने पर नेता बनना और नेता से पूछने पर प्रभावशाली बनना आदि। इन बातों में एक ही सोच दिखाई देती है कि सभी को अपने भाग्य में अच्छा ही दिखाई देता है। भाग्य मन की प्रार्थना अथवा आशा है। वस्तुतः हमारे पूर्व कर्म ही भाग्य हैं।

किसी-किसी का भाग्य उसके परिवार से जुड़ा होता है, जिसके कारण सफल व्यक्ति जैसे खिलाड़ी, राजनीतिज्ञ या फिल्मी जगत् में अपना नाम कमाता है। जिनका भाग्य परिवार

से जुड़ा नहीं होता वह निर्बल होता है। उसे सही और गलत का ज्ञान नहीं रहता है। कभी–कभी ऐसे व्यक्ति अधिक सफल होते हैं, जो अपने आत्मविश्वास के अनुसार अपने को परिवर्तित कर लेते हैं। ऐसे व्यक्ति भाग्य पर कम निर्भर रहते हैं। अपने प्रयास से भाग्य को भी परिवर्तित करने का साहस रखते हैं। यही कारण है कि उनके हाथों में अपना भाग्य होता है।

हमें अपने आप को इसीलिए भाग्यशाली समझना चाहिए, क्योंकि दूसरे प्राणियों की अपेक्षा जो हम चाहते हैं, कर सकते हैं। हमें उदास या परेशान होकर अपना जीवन नष्ट नहीं करना चाहिए। भगवान् ने हमें दो आँखें दी हैं, जिससे हम इस सुन्दर संसार को देख पाते हैं। दोनों हाथों से काम कर सकते हैं। दो पैरों से आगे बढ़ने का साहस मिलता है, यह सब भाग्य ही तो है।

हमें किसी भी परिस्थिति में निराश होकर आत्महत्या का विचार मन में नहीं लाना चाहिए। यदि हम अपने भाग्य को कोसते हैं तो हम स्वयं अपने शत्रु हैं। भाग्य को बढ़ाना या अच्छा करना हमारे अपने हाथों में है। बस, यही भाग्य का सच है।

2. Twelve Contemplation-(Poem)

मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी भाषाओं के साथ अंग्रेजी में भी कविताएँ लिखीं हैं। यह ‘Twelve Contemplation’ अर्थात् बारह भावना आज की युवा पीढ़ी जो संस्कृत, प्राकृत भाषा को नहीं समझते उनके लिए यह कविता लिखी है। इसमें जीवन की सच्चाई को अल्प व सार्थक शब्दों में व्यक्त किया गया है।

प्रत्येक व्यक्ति अकेला आता है और अकेला ही जाता है। केवल उसके कर्म ही उसके साथ जाते हैं। अन्त समय में हमारा परिवार, घर, धन, यहाँ तक कि शरीर भी साथ नहीं जाता है। ये सब पानी के बुलबुले के समान है। प्रत्येक वस्तु अपनी परिस्थिति के अनुसार बदलती रहती है। इस संसार में निर्धन व्यक्ति पैसा न होने से दुखी है तो धनवान अधिक पैसे कमाने के लालच से दुखी है। कोई भी अपने कर्म व भाग्य से सन्तुष्ट, सुखी दिखाई नहीं देता।

हमें धर्म के द्वारा अपने मन व आत्मा को शुद्ध बनाना चाहिए। अपनी आत्मा को शुद्ध रूप से देखना चाहिए। क्योंकि भ्रम से छुटकारा पाने का यही एक रास्ता है और मोक्ष प्राप्ति का अन्य कोई रास्ता नहीं है।

3. I love My Soul-(Poem)

कवि श्रीप्रणम्यसागर जी की अंग्रेजी कविताओं में I love my soul भी एक कविता है। इस कविता के द्वारा कवि ने संसार के बनावटी एवं झूठे रिश्तों की सच्चाई को उजागर किया है। कवि कहते हैं कि ईश्वर तो मेरी अन्तरात्मा में छिपा है, इसीलिए मैं अपनी आत्मा से प्रेम करता हूँ। सब एक दूसरे के रिश्ते से बँधे हुए हैं। न कोई हमारा है और न हम किसी के हैं। हमारा मस्तिष्क भी गलत सोच से परिपूर्ण है और हमारी इच्छाएँ भी आग की तरह हानि पहुँचाने वाली हैं। आत्मा के लिए इन्द्रिय सुख नहीं बल्कि मोक्षमार्ग को प्रशस्त करने वाला सुख ही सब कुछ है। मोक्ष तो मेरी आत्मा के अन्दर है। हम सब एक होते हुए भी सबकी सोच अलग-अलग है। संसार में जितनी वस्तुएँ दिखाई पड़ती है वे सब बनावटी हैं। ईश्वर तो मेरी आत्मा में है, इसीलिए मैं अपनी आत्मा से प्रेम करता हूँ।

डॉ. श्रीचन्द्र जैन
अजित प्रसाद जैन
रेवाड़ी, हरियाणा

बाह्याभ्यंतरभेदेन द्विविधेऽपि तपोविधौ।
अज्ञानप्रतिपक्षत्वात् स्वाध्यायः परमं तपः॥ -(हरिवंशपुराण, सर्ग 1, 69)

अर्थः-बाह्य और आभ्यंतर दो प्रकार के तप में अज्ञान का विरोधी होने से स्वाध्याय ही उत्कृष्ट तप है।

निरस्त-सर्वाक्ष-कषाय-वृत्ति र्विधेयते येन शरीरिवर्गः।
प्ररूढ़-जन्माङ्कुर-शोषपूषा स्वाध्यायतोऽन्योऽस्ति ततो न योगः॥
(अमितगति-श्रावकाचार, 13, 87)

अर्थः-जिससे प्राणी समस्त इन्द्रिय-विषय और कषाय की प्रवृत्ति पर विजय प्राप्त करता है और जो जन्मसंतति के अंकुर को शुष्क करने में सूर्य के समान है ऐसे स्वाध्याय से बढ़कर कोई दूसरा योग नहीं है।

कुन्दकुन्द अष्टक

रचयिता - मुनि प्रणम्यसागर

(छन्द : स्रग्विणी)

(१)

सत्यपन्थाश्च येन प्रतिष्ठापितः
सत्यवादेन देवी गिरौ निर्जिता।
सत्यसन्देशको यो विनापेक्षया
कुन्दकुन्दं मुनीशं स्तुवे तं मुदा॥

अर्थ—ऊर्जयन्त पर्वत पर श्वेताम्बरों से हुए विवाद में जिन्होंने देवी को जीता और सत्य पन्थ अर्थात् दिगम्बर मत को प्रतिष्ठापित किया। जो बिना किसी की अपेक्षा के सत्य के समीचीन उपदेशक थे। उन श्री कुन्दकुन्द मुनीश्वर की प्रसन्नता के साथ मैं स्तुति करता हूँ।

(२)

प्राभृतं भूरिशो येन निर्मापितं
सत्यदैगम्बरं वर्त्म यत्राधृतम्।
यद्वचोभिर्मता यस्य सत्यात्मता
कुन्दकुन्दं मुनीशं स्तुवे तं मुदा॥

अर्थ—जिन्होंने अनेक प्रकार के पाहुडों की रचना की, जिसमें उन्होंने सत्य दैगम्बर मार्ग को रखा है। जिनके वचनों से ही जिनकी सत्यनिष्ठा का परिचय होता है, ऐसे श्री कुन्दकुन्द मुनीश्वर की प्रसन्नता के साथ मैं स्तुति करता हूँ।

(३)

सर्वभव्यार्थिनां मुक्तिमार्गैषिणा-
मात्मदृग्बोधसौख्याधिकाकांक्षिणाम्।
येन वृत्तं प्रदत्तं हि निःश्रेयसं
कुन्दकुन्दं मुनीशं स्तुवे तं मुदा॥

अर्थ—मुक्तिमार्ग की इच्छा करने वाले, आत्मा के दर्शन, ज्ञान और सुख की पूर्णता के आकांक्षी सभी भव्य जीवों को जिन्होंने मुक्ति देने वाला चारित्र प्रदान किया है, उन कुन्दकुन्द मुनीश्वर की प्रसन्नता के साथ मैं स्तुति करता हूँ।

(४)

योऽत्र देवेन्द्रभूपेन्द्रदुर्वादिभिः
पूर्वसूरीश्वरैर्मुक्तिकामार्थिभिः।
भूरि संस्तूयते स्मर्यते वन्द्यते
कुन्दकुन्दं मुनीशं स्तुवे तं मुदा॥

अर्थ–जो इस लोक में देवेन्द्र, राजा और दुष्ट वाद करने वालों से तथा मुक्ति की इच्छा करने वाले पूर्वाचार्यों के द्वारा खूब स्तुति को प्राप्त हुए, याद किए गए और वन्दित हैं, उन श्री कुन्दकुन्द मुनीश्वर की प्रसन्नता के साथ मैं स्तुति करता हूँ।

(५)

भव्यजीवाब्जिनीनाञ्च यो भास्करो
यस्य कुन्दावदाता सुदन्तावली।
नासिका तु प्रमाणं द्विनेत्रं नयौ
कुन्दकुन्दं मुनीशं स्तुवे तं मुदा॥

अर्थ–भव्य जीव रूपी कमलों को जो सूर्य के समान खिलाते हैं, जिनकी श्रेष्ठ दन्त पंक्ति कुन्द पुष्प के समान हैं, जिनकी नासिका प्रमाण को और दोनों नेत्र दो नयों की तरह हैं ऐसे श्री कुन्दकुन्द मुनीश्वर की प्रसन्नता के साथ मैं स्तुति करता हूँ।

(६)

यस्य शास्त्रे पदार्थाश्च तत्त्वानि वा
द्रव्यपर्यायभावस्वभावा गुणाः।
स्पष्टमाभान्ति वै दर्पणे बिम्बवत्
कुन्दकुन्दं मुनीशं स्तुवे तं मुदा॥

अर्थ–जिनके शास्त्र में सभी पदार्थ, तत्त्व, द्रव्य और पर्यायों के भाव, स्वभाव तथा गुण, दर्पण में बिम्ब के समान निश्चित ही स्पष्ट झलकते हैं, उन श्री कुन्दकुन्द मुनीश्वर की प्रसन्नता के साथ मैं स्तुति करता हूँ।

(७)

यस्य सारत्रयं शोभते भूतले
यस्य वाणी प्रमाणात्मिका मन्यते।
शेमुषी यस्य मोहादिभिः शून्यका
कुन्दकुन्दं मुनीशं स्तुवे तं मुदा।।

अर्थ–जिनके समयसार, प्रवचनसार और पञ्चास्तिकाय से तीनों सार इस भूतल पर शोभित हैं, जिनकी वाणी प्रमाणात्मक मानी जाती है, जिनकी बुद्धि मोह आदि विकारों से रहित है, उन श्री कुन्दकुन्द मुनीश्वर की प्रसन्नता के साथ मैं स्तुति करता हूँ।

(८)

शुद्धयोगार्पणाय प्रयत्नः सदा
शुद्धिजीवास्तिकायाय धीसम्पदा।
शुद्धतत्त्वार्थतायी च यः सर्वदा
कुन्दकुन्दं मुनीशं स्तुवे तं मुदा।।

अर्थ–जिनका प्रयास सदा शुद्धोपयोग की मुख्यता के लिए है, जिनकी बुद्धि रूपी धन शुद्ध जीवास्तिकाय के लिए है और जो शुद्ध तत्त्वार्थ का ही विस्तार करते है, उन श्री कुन्दकुन्द मुनीश्वर की प्रसन्नता के साथ मैं स्तुति करता हूँ।

मुनिप्रणम्यसागराष्टकम्

(स्रग्विणीछन्दसि)

यस्य भाले हि तेजो विवस्वत्समं, मानसे भाति सोमोपमा शीतता।
प्रीतिता सर्वलोकं प्रति प्राञ्जला, सागरं तं प्रणम्यं मुनीन्द्रं भजे॥१॥

नेत्रयोर्भाति कारुण्यधारामला, भावना पावमानी हृदि भ्राजते।
लोकसेवा च येनाङ्गसङ्गीकृता, सागरं तं प्रणम्यं मुनीन्द्रं भजे॥२॥

आशिषा यस्य पङ्गुर्गिरिं लङ्घ्यते, शक्तिहीनो बलेन द्रुतं जृम्भते।
यस्य कीर्तिश्च तारापथं चुम्बते, सागरं तं प्रणम्यं मुनीन्द्रं भजे॥३॥

यन्मुखेन्दुप्रसूतं वचः पावनं, भक्तवृन्दं निपीयाशु देवायते।
यस्य सद्दर्शनेनाप्यते दैवतं, सागरं तं प्रणम्यं मुनीन्द्रं भजे॥४॥

लोकमुद्धर्तुकामेन येनात्मनो, जीवनं पावनं सर्वमेवार्पितम्।
देवरूपाभिरामं महान्तं बुधं, सागरं तं प्रणम्यं मुनीन्द्रं भजे॥५॥

यस्य निःस्वार्थताऽऽदर्शरूपात्मिका, काममोहादिकालुष्यसम्मर्दिनी।
यस्य वैराग्यरागोर्जिता साधना, सागरं तं प्रणम्यं मुनीन्द्रं भजे॥६॥

यस्य वैदुष्यमालोक्य विद्योर्जितं, कान्दिशीकायते हन्त हा गीष्पतिः।
श्रावकोद्धारकं ज्ञानरत्नाकरं, सागरं तं प्रणम्यं मुनीन्द्रं भजे॥७॥

मारसंहारकं मोक्षविद्योतकं, जैनसत्संस्कृतेर्नित्यसम्पोषकम्।
भक्तभक्तिप्रभाभास्करं भासुरं, सागरं तं प्रणम्यं मुनीन्द्रं भजे॥८॥

श्रीमत्कचरणचञ्चरीकः
डॉ. मनोहरलालआर्यः
बी-413, वानप्रस्थाश्रम
पतञ्जलि योगपीठ (हरिद्वार)

3. आचार्य कुन्दकुन्ददेव-एक सूत्रधार : सूत्रपाहुड

बिना आलम्बन के गति-प्रगति संभव नहीं है। ''डूबते को तिनके का सहारा'' इस लोकोक्ति के अनुसार इस संसार समुद्र में डूबते प्राणियों को एक सहारे की जरूरत है। वह सहारा ही सर्वहारी मानव-समाज का प्राण है। जिन्होंने दार्शनिक रूप को प्राप्त कर आत्म आनंद को प्राप्त किया है, ऐसे जिनवरों के वचन, उनके आचरण ही वे सूत्र हैं/ डोर हैं, जिससे सभी को वह आत्म आनंद प्राप्त हो सकता है। उन महान् दार्शनिक जिनेन्द्रदेव के वचन ही सूत्र हैं। उन्हीं वचनों को गणधरदेव ने कहा और उन्हीं को राग-द्वेष रहित परवर्ती आचार्य, मुनियों ने कहा। उन सूत्र वचनों को जो जानता है, मानता है वह संसार में जन्म-मरण का नाश करता है। जैसे लोहे की सुई, सूत्र (डोरा) के बिना हो तो नष्ट हो जाती है, खो जाती है और डोरा सहित हो तो नष्ट नहीं होती है। जो जिन-सूत्रों को जानता है तो वह इन्द्रियों के अगोचर भी आत्मा को प्रत्यक्ष से-स्वसंवेदन से जान लेता है। कहा है-

पुरिसो वि जो ससुत्तो ण विणासइ सो गओ वि संसारे।
सच्चेयण पच्चक्खं णासदि तं सो आदिस्समाणो वि॥

अर्थात् ससूत्र जो पुरुष है वह संसार में रहकर भी विनष्ट नहीं होता है क्योंकि उसकी आत्मा अदृश्यमान होकर भी सत्ता रूप चैतन्य चमत्कारमय स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से अनुभव में आता है और वह संसार को नष्ट कर देता है। परमार्थ में प्रवर्तन तो जिनसूत्र से ही होता है पर व्यवहार में प्रवर्तन भी जिनसूत्र के अनुसार होना चाहिए। वह व्यवहार, परमार्थ का सहायक है इसलिए व्यवहारसूत्र को भी जानना चाहिए। जो क्रियाएँ परमार्थ की साधक हैं, उन्हें व्यवहार में भी अन्यथा न करें। जैसे कि जो निर्ग्रन्थ हैं, वे ही पाणिपात्र में भोजन करते हैं, अन्य गृहस्थों को कभी खेल-खेल में भी ऐसा नहीं करना चाहिए। बाल के अग्रभाग की कोटि अर्थात् अणी मात्र भी परिग्रह नहीं रखने वाले साधु की श्रावक इच्छा करता है अर्थात् उसके स्वरूप को चाहता है इसलिए नमोऽस्तु करता है। यह व्यवहार भी श्रावक के लिए विधेय है।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः। ॐ नमः सिद्धेभ्यः। ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

卐 शास्त्रस्वाध्याय का प्रारम्भिक मंगलाचरण 卐

श्रीश्रुतभक्ति

अथ पौर्वाह्निक-स्वाध्याय-क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं, भावपूजावंदनास्तवसमेतं श्रीश्रुतभक्ति कायोत्सर्गं कुर्वेऽहं।

ओकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमोनमः।।

अविरलशब्दघनौघ-प्रक्षालितसकल-भूतलकलङ्का।
मुनिभिरुपासिततीर्था, सरस्वती हरतु नो दुरितम्।।

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

श्री परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरुभ्यो नमः। सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनःप्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं '**सुत्तपाहुड**' नामधेयं अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोऽनुसारतामासाद्य **आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेवविरचितं** इदं शास्त्रं श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु।

मङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम्।।

सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वकल्याणकारणम्।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम्।।

कोटीशतं, द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पञ्चाशदष्टौ च सहस्रसंख्यमेतच्छ्रुतं पञ्चपदं नमामि।।१।।

अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्तिजुत्तो सुदणाणमहोवहिं सिरसा।।२।।

इच्छामि भंते! सुदभत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं अंगोवंगपइण्णयपाहुडय-परियम्मसुत्तपढमाणिओगपुव्वगयचूलिया चेव सुत्तत्थयथुइधम्मकहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होदु मज्झं।

श्रीआचार्यभक्ति

अथ पौर्वाह्णिक स्वाध्याय क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकलकर्मक्षयार्थं, भावपूजावन्दना स्तवसमेतं, श्री आचार्य भक्ति कायोत्सर्गं कुर्वेऽहं।

श्रुतजलधिपारगेभ्यः, स्वपरमत-विभावनापटुमतिभ्यः।
सुचरिततपोनिधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः॥१॥

छत्तीसगुणसमग्गे, पञ्चविहाचारकरणसंदरिसे।
सिस्साणुग्गहकुसले, धम्माइरिए सदा वन्दे॥२॥

गुरुभत्तिसंजमेण य, तरंति संसारसायरं घोरम्।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मणमरणं ण पावेंति॥३॥

ये नित्यं व्रतमन्त्र-होमनिरताः ध्यानाग्निहोत्राकुलाः।
षट्कर्माभिरतास्तपोधनधनाः, साधुक्रियाः साधवः॥

शीलप्रावरणागुणप्रहरणाश्, चन्द्रार्कतेजोऽधिकाः।
मोक्षद्वारकपाटपाटनभटाः, प्रीणन्तु मां साधवः॥४॥

गुरवः पांतु नो नित्यं, ज्ञानदर्शनायकाः।
चारित्रार्णवगम्भीरा, मोक्षमार्गोपदेशकाः॥५॥

इच्छामि भंते! आयरियभत्तिकाउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसणसम्मचारित्त-जुत्ताणं पंचविहाचाराणं, आयरियाणं आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं तिरयणगुण-पालणरयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मखओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होदु मज्झं।

सुत्तपाहुड
(णंदिणीटीगासहिदं)

उत्थानिका– अह किं णाम सुत्तं तस्स य किं पओजणं चेदि वोत्तुकामो आइरियदेवो समाह–

अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
सुत्तत्थमग्गणत्थं सवणा साहंति परमत्थं ॥1॥

टीका–एत्थ गाहाए पुव्वद्धेण सुत्तस्स लक्खणं भणियं। **अरहंतभासियत्थं** ति सुत्तस्स पढमं लक्खणं। जे खलु क्षुहातिसारागरोगादिसारीरियमाणासियदोसेहिं परिमुत्ता तेण वीयराया, अरूविचेयणरूवि–पोग्गलपरमाणुयादिसुहुमट्ठाणं सुमेरुपव्वयादिखेत्तविप्पयिट्ठाणं रामरावणादिकाल–विप्पयिट्ठाणं वेत्ता तेण सव्वण्हुणो दिव्वज्झुणिणा सत्तसयलघुभासाहिं सह अट्ठारसमहाभासासु अक्खर–अणक्खरमयसद्दकलावेहिं एक्कपदं ओट्ठतालुस्सासादि–णिप्फंदेण विणा मुहकमलविणिग्गयं

उत्थानिका–अब सूत्र किसे कहते हैं ? उसका क्या प्रयोजन है ? इस प्रकार की इच्छा करते हुए आचार्य देव यहाँ कहते हैं–

अन्वयार्थ–(अरहंतभासियत्थं) अरहंत भगवान् के द्वारा प्रतिपादित **(गणहरदेवेहिं)** गणधर देवों के द्वारा **(सम्मं गंथियं)** सम्यक् प्रकार से गुंफित **(सुत्तत्थमग्गणत्थं)** आगम के अर्थ का अन्वेषण करना ही जिसका प्रयोजन है, उसे सूत्र कहते हैं, ऐसे सूत्र के द्वारा **(सवणा)** सम्यग्दृष्टि दिगम्बर साधु **(परमत्थं)** परमार्थ को **(साहंति)** साधते हैं।

टीकार्थ–यहाँ गाथा के पूर्वार्ध से सूत्र का लक्षण कहा है। **अरहंतभासियत्थं** इस प्रकार यह सूत्र का प्रथम लक्षण है। जो क्षुधा–तृषा, राग–रोगादि शारीरिक, मानसिक दोषों से मुक्त हैं इसी कारण से वे वीतराग हैं। अरूपी चैतन्यरूपी पुद्गलपरमाणु आदि सूक्ष्म स्थानों को, सुमेरु पर्वत आदि क्षेत्र विप्रकृष्ट स्थानों को, राम–रावण आदि काल से विप्रकृष्ट स्थानों को वे ही जानने वाले हैं, इसी कारण से वे सर्वज्ञ हैं। दिव्यध्वनि के द्वारा सात सौ लघु भाषाओं के साथ 18 महाभाषाओं में अक्षर और अनक्षरमय शब्द कलापों के द्वारा एक साथ ओष्ठ, तालु, श्वास आदि के निष्पंदन के बिना मुख कमल से विनिर्गत हित–मित–प्रिय भाषण वे सर्वज्ञदेव करते हैं, इसी कारण से हितोपदेशी वह अरिहंत ही होते हैं। उनके द्वारा कहा हुआ अर्थ ही सूत्र है। इस कथन से गौतम, कपिल, कणाद आदि छद्मस्थ जीवों के सूत्र का प्रतिषेध किया गया है।

जो भी लखा सहज से अरहंत गाया, सत् शास्त्र बाद गणनायक ने रचाया।
सूत्रार्थ को समझने पढ़ शास्त्र सारे, साधे अतः श्रमण है परमार्थ प्यारे ॥1॥

हिदमिदपियभासणं भासंति तेण हिदोवदेसिणो ते खलु अरिहंता होंति। तेहिं भासियं अत्थं खु सुत्तं होदि। एदेण गोदमकपिलकणादादिछदुमत्थाणं सुत्तस्स पडिसेहो कदो।

गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं ति सुत्तस्स विदियं लक्खणं। चउव्विहबुद्धिइड्ढिबलेण चउअणुओगेसु अरिहंतभासिदसव्वतच्चत्थं गुंफंति तं रयणं सुत्तं होदि। वुत्तं च–

सुत्तं गणहर गथिदं तहेव पत्तेयबुद्ध कहियं च।
सुदकेवलिणा कहियं अभिण्णदसपुव्विगधिदं च॥

(भगवती आराधना 33)

एवंविह-सुत्तस्स किं पओजणं ति गाहाए पच्छद्धेण वुच्चदि **सवणा** मणं अप्पम्मि धरेदूण अप्पसहावसाहणट्ठं समं कुणंति ते समणा होंति। अहवा सुत्तपरूविदत्थसवणसीला सवणा होंति। अहवा मणेण सह जे ववहारणिच्छयमोक्खमग्गम्मि वसंति ते समणा होंति। ते किं कुव्वंति। **परमत्थं** परमं अत्थं णिस्सेयससुहं **साहंति** आराहंति। किमट्ठं? **सुत्तत्थमग्गणत्थं** सुत्ते विहिदत्थस्स वा सुत्तगदत्थस्स वा सुत्तस्स सारस्स ससमयरूवसुद्धप्पसुहस्स वा मग्गणत्थं गवेसणट्ठं। वुत्तं च–

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससुत्तमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं॥

(समयसार 17) ॥1॥

गणधरदेवों के द्वारा समीचीन रूप से ग्रंथित है अर्थात् गूँथा हुआ है इस प्रकार यह सूत्र का दूसरा लक्षण है। चार प्रकार की बुद्धि-ऋद्धि के बल से चार अनुयोगों में अरिहंत के द्वारा कहे हुए सभी तत्त्वार्थ को जो गुंफित करते हैं, वह रचना सूत्र है।

कहा भी है–''जो गणधर के द्वारा ग्रथित हो, प्रत्येक बुद्ध, श्रुतकेवली और अभिन्न दशपूर्वी के द्वारा कहा हो, वह सूत्र है।''

इस प्रकार के सूत्र का क्या प्रयोजन है, यह गाथा के पश्चातार्ध से कहा गया है। **सवणा** मन को आत्मा में धारण करके आत्म स्वभाव का साधन करने के लिए जो श्रम करते हैं वे श्रमण होते हैं अथवा सूत्र में प्ररूपित अर्थ को सुनने के स्वभाव वाले श्रमण होते हैं अथवा मन के साथ जो व्यवहार, निश्चय मोक्ष मार्ग में रहते हैं वे सब श्रमण होते हैं। वे क्या करते हैं? वे परमार्थ अर्थात् निःश्रेयस सुख को साधते हैं, उसकी आराधना करते हैं। किसलिए करते हैं? **सुत्तत्थमग्गणत्थं** सूत्र में कहे हुए अर्थ की अथवा सूत्रगत अर्थ की अथवा सूत्र जो सारभूत है, उसका स्वसमय रूप शुद्धात्मा के सुख की मार्गणा करने के लिए या गवेषणा करने के लिए आराधना करते हैं।

कहा भी है–''जो अपनी आत्मा को अबद्ध, अस्पष्ट, अनन्य, अविशेष और कहे हुए सूत्र में सारभूत को देखता है, वह समस्त जिनशासन को देखता है''॥1॥

उत्थानिका—अह को सिवमग्गे वसइ त्ति भणदि–

सुत्तम्मि जं सुदिट्ठं आयरियपरंपरेण मग्गेण।
णाऊण दुविहसुत्तं वट्टइ सिवमग्ग जो भव्वो ॥2॥

टीका— जं वत्थुसरूवं वा छदव्वं वा बहिरप्पंतरप्पपरमप्पसरूवं वा **सुत्तम्मि** गणहररयिदवयणम्मि **सुदिट्ठं** णिद्दिट्ठं। तं **आयरियपरंपरेण मग्गेण** सक्खियं गणधररयिदसद्दसवण-समयाभावादो पमाणियायरियपरंपरादो उवलद्धं। वट्टमाणकाले आइरियगुणहरदेवरयिदकसाहपाहुडसुत्तं आइरियधरसेण-पदत्तणाणजलेण विमलभूद-पुप्फदंतभूदबलिभडारयलिहिदछक्खंडागमसुत्तं आइरिय-कुंदकुंददेव-विरइयसमयपाहुड-पवयणसार-पंचत्थिकाय-णियमसार-अट्ठपाहुड-बारसाणुवेक्खा-भत्तिपाठसुत्तं आइरियजइवसहविरयिदतिलोयपण्णत्ति-चुण्णिसुत्तं आइरियवट्टकेरविरइयमूलायासुत्तं आइरियगिद्ध-पिच्छावरणाम-उमासामिविरइयतच्चत्थसुत्तं आइरियसिवज्जविरइयभगवदीआराहणासुत्तं आइरियकत्तिकेय-विरइय कत्तिकेयाणुवेक्खासुत्तं आइरियसमंतभद्दविरइयदेवागम-थुदिविज्जा-

---

उत्थानिका—अब मोक्षमार्ग में कौन रहता है ? यह कहते हैं–

अन्वयार्थ— (जं) जिसको **(आयरियपरंपरेण मग्गेण)** आचार्यों की परम्परा मार्ग के द्वारा **(सुत्तम्मि)** सूत्र में **(सुदिट्ठं)** निर्दिष्ट है **(दुविहसुत्तं)** दो प्रकार के सूत्र को अर्थात् द्रव्यश्रुत और भावश्रुत को **(णाऊण)** जानकर **(जो)** जो **(सिवमग्ग)** मोक्षमार्ग में **(वट्टदि)** वर्तन करता है [वह] **(भव्वो)** भव्य है।

टीकार्थ—जो वस्तु का स्वरूप अथवा छह द्रव्य अथवा बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा का स्वरूप गणधर रचित वचन वाले सूत्र में निर्दिष्ट किया है, वही आचार्य परम्परा के मार्ग से, साक्षात् आया है। वही गणधर परमेष्ठी के द्वारा रचित शब्दों के सुनने का वर्तमान काल में अभाव होने से प्रामाणिक आचार्यों की परम्परा से उपलब्ध हुआ है। वर्तमान काल में आचार्य गुणधरदेव द्वारा रचित कषाय पाहुड सूत्र। आचार्य धरसेन के द्वारा प्रदत्त ज्ञान जल से निर्मल हुए पुष्पदंत और भूतबलि भट्टारक के द्वारा लिखित षट्खण्डागम सूत्र। आचार्य कुन्दकुन्ददेव के द्वारा विरचित समय प्राभृत, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, नियमसार, अष्टपाहुड, बारस अनुप्रेक्षा, भक्तिपाठ सूत्र। आचार्य यतिवृषभदेव रचित त्रिलोक प्रज्ञप्ति और चूर्णिसूत्र। आचार्य वट्टकेर विरचित मूलाचार सूत्र। आचार्य गृद्धपिच्छ अपरनाम उमास्वामी द्वारा विरचित तत्त्वार्थसूत्र। आचार्य शिवार्य द्वारा विरचित भगवती आराधना सूत्र। आचार्य कार्तिकेय द्वारा विरचित कार्तिकेयानुप्रेक्षासूत्र। आचार्य समंतभद्र द्वारा विरचित देवागम, स्तुति-विद्या, स्वयंभूस्तोत्र, युक्त्यनुशासन, रत्नकरण्डक श्रावकाचार ग्रंथ सूत्र।

सत् सूत्र में कथित आर्ष परम्परा से, जो भी मिला द्विविध सूत्र अभी जरा से।
जो जान मान उसको मुनि भव्य होता, आरूढ़ मोक्ष पथ पे शिव सौख्य जोता ॥2॥

सयंभूथोत्तजुत्तियणुसासण-रयणकरंडसावयायारगंथसुदं आइरियपुज्जपाददेवविरइय सव्वट्ठसिद्धि-समाहितंत-इट्ठोवदेस-जिणिंदवायरण-सिद्धिपियथोत्त-दसभत्तिपाठ-गंथसुदं पत्तकेसरिविरइय पत्तकेसरिथोत्तं आइरियजोइंदविरइय परमप्पपयास-जोगसार गंथसुदं आइरियअकलंकदेव विरइयअट्ठसदी-तच्चत्थवत्तिय-सिद्धिविणिच्छय-णायविणिच्छय-लघीयत्तय-पमाणसंगह सवुत्तिगंथसुदं आइरियवीरसेणविरइयधवल-जयधवलटीकासुदं आइरियजिणसेण विरइय आदिपुराण-पासब्भुदअ-जयधवलटीकासुदं आइरियगुणभद्दविरइय-अप्पाणुसासण-उत्तरपुराण-जिणदत्तचरियगंथसुदं आइरिय विज्जाणंदविरइयअत्तपरिक्खा-पमाणपरिक्खा-पत्तपरिक्खा-सच्चसासणपरिक्खा विज्जाणंदमहोदअ-सिरिपुरपासणाहथोत्त-तच्चत्थसलोगवत्तिय-अट्ठसहस्सी-जुत्तियणुसासणलंयार गंथसुदं। आइरियअमियचंदसूरिविरइय पुरिसत्त्थ-सिद्धिउवाय-तच्चत्थसार-समयसारटीगा-पवयणसारटीगा-पंचत्थिकायटीगा-गंथसुदं आइरिय णेमिचंदसिद्धंतचक्कवट्टिविरइय-गाोम्मटसारजीवकंडकम्मकंडतिलोयसार-लद्धिसार-गंथसुदं इच्चेवमादिदव्वसुदं तज्जणिद-खओवसमिय-णाणाणुसारिभावसुदं ति **दुविहसुत्तं णाऊण जो सिवमग्ग वट्टइ** चरइ सो **भव्वो** रयणत्तयजुत्तो मुणी होदि ॥2॥

उत्थानिका—अह सुत्तमग्गाणुसारेण पवट्टणे को गुणो त्ति भणदि–

आचार्य पूज्यपाददेव विरचित सर्वार्थसिद्धि, समाधितंत्र, इष्टोपदेश, जैनेन्द्र व्याकरण, सिद्धिप्रिय स्तोत्र, दसभक्ति पाठ ग्रंथ श्रुत। आचार्य पात्रकेसरी विरचित पात्रकेसरीस्तोत्र। आचार्य योगेन्द्रदेव विरचित परमात्म प्रकाश, योगसार ग्रंथ श्रुत। आचार्य अकलंकदेव विरचित अष्टशती, तत्त्वार्थ राजवार्तिक, सिद्धिविनिश्चय, न्यायविनिश्चय, लघीयस्त्रय प्रमाणसंग्रहसवृत्ति यह ग्रंथ श्रुत। आचार्य वीरसेन विरचित धवला टीका, जयधवला टीकारूप श्रुत। आचार्य जिनसेन विरचित आदिपुराण, पार्श्वाभ्युदय, जयधवला टीकारूप श्रुत। आचार्य गुणभद्र विरचित आत्मानुशासन, उत्तरपुराण, जिनदत्तचरित्र ग्रंथरूप श्रुत। आचार्य विद्यानंद विरचित आप्तपरीक्षा, प्रमाणपरीक्षा, पत्रपरीक्षा, सत्यशासनपरीक्षा, विद्यानंदमहोदय सिरिपुर पार्श्वनाथस्तोत्र, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, अष्टसहस्त्री, युक्त्यनुशासनअलंकार ग्रंथश्रुत। आचार्य अमृतचंद्रसूरि विरचित पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, तत्त्वार्थसार, समयसार टीका, प्रवचनसार टीका, पंचास्तिकायटीकारूप ग्रंथ श्रुत। आचार्य नेमिचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार जीवकाण्ड, गोम्मटसार कर्मकाण्ड, त्रिलोकसार, लब्धिसार ग्रंथ श्रुत इत्यादि द्रव्यश्रुत और उस द्रव्यश्रुत से उत्पन्न हुए क्षयोपशम ज्ञान के अनुसार होने वाला भावश्रुत, इस तरह यह दोनों प्रकार के श्रुत को जान करके जो शिवमार्ग में वर्तन करता है अर्थात् चलता है वह भव्य रत्नत्रय से युक्त मुनि होता है ॥2॥

उत्थानिका—अब सूत्र मार्ग के अनुसार प्रवर्तन करने में क्या गुण हैं ? यह कहते हैं–

सुत्तं हि जाणमाणो भवस्स भवणासणं च सो कुणदि।
सूई जहा असुत्ता णासदि सुत्तेण तहा णोवि ॥3॥

टीका—अभवस्स वीयरायारहंतस्स **सुत्तं हि जाणमाणो** जो पुव्वुत्तपयारेण **सो च भवणासणं कुणदि।** दव्वसुदणाणेण जो परमत्थेण परमत्थं कंखदि तस्स भवकारणभूदकम्मविणासणं अवस्सं होइ। **जहा असुत्ता** सुत्तेण रहिदा **सूई णासदि** ण पावइ **तहा सुत्तेण** दव्वभावसुदाराहणाए **णो वि** विणावि परभवे मोक्खकारणभूदसामग्गिं ण पावेदि ॥3॥

उत्थानिका—पुणो वि तमेवत्थं कहेदि–

पुरिसो वि जो ससुत्तो ण विणासइ सो गओ वि संसारे।
सच्चेयणपच्चक्खं णासदि तं सो अदिस्समाणो वि ॥4॥

अन्वयार्थ—(अभवस्स) भव रहित के **(सुत्तं)** सूत्र को **(जाणमाणो)** जानने वाला पुरुष **(हि)** निश्चय से **(भवणासणं)** भव का नाश **(कुणदि)** करता है। **(च)** और **(सो)** वह **(जहा)** जैसे **(असुत्ता)** सूत्र रहित **(सूई)** सुई **(णासदि)** नष्ट होती है अर्थात् खो जाती है **(सुत्तेण तहा)** उस प्रकार सूत्र सहित **(णोवि)** नहीं खोती है।

टीकार्थ—जो वीतराग अरिहंत भगवान् हैं वह भव से रहित हैं उनके सूत्र को ही, जो पूर्वोक्त प्रकार से कहा गया है उसको जानने वाला भव का नाश करता है। द्रव्य श्रुतज्ञान से जो परमार्थ की इच्छा करता है उसके लिए संसार के कारणभूत कर्मों का विनाश अवश्य होता है। जैसे-सूत्र से रहित अर्थात् धागे से रहित सुई नष्ट हो जाती है या खो जाती है, प्राप्त नहीं होती है, उसी प्रकार से द्रव्यभाव श्रुत की आराधना रूप सूत्र के बिना परभव में मोक्ष के कारणभूत सामग्री की प्राप्ति नहीं होती है ॥3॥

उत्थानिका—पुनः उसी अर्थ को कहते हैं–

अन्वयार्थ— [उसी प्रकार] **(जो वि)** जो भी **(पुरिसो)** पुरुष **(ससुत्तो)** सूत्र सहित है **(सो)** वह **(संसारे)** संसार में **(गओ वि)** जाता हुआ भी **(ण विणासइ)** नष्ट नहीं होता **(अदिस्समाणो वि)** अदृश्यमान होता हुआ भी **(सो)** वह **(सच्चेयणपच्चक्खं)** उस स्वात्म या स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से **(तं)** संसार को **(णासदि)** नाश करता है।

साधू विराग यदि है जिन-शास्त्र ज्ञाता, संसार का विलय है करता सुहाता।
सूची न नष्ट यदि डोर लगी हुई हो, खोती नितान्त, यदि डोर नहीं लगी हो॥3॥
साधू ससूत्र यदि है भव में भले हो, होता न नष्ट भव में भव ही टले वो।
हो जीव यद्यपि अमूर्त सुसूत्र द्वारा, आत्मानुभूति कर काटत कर्म सारा॥4॥

टीका—जो वि पुरिसो ससुत्तो सो संसारे देवणिरयादिगईसु **गओ वि ण विणासइ** तत्थ वि अप्पहिदकारणभूदणाण-भावणासु रोचेदि। **सो** अप्पा **अदिस्समाणो वि सच्चेयणपच्चक्खं** अदिस्समाणो वि सो आदा सच्चेयण-पच्चक्खेण तं संसारं णासदि। अहं परदव्वेण भिण्णं सच्चेयणदव्वं जं दिस्समाणं तं सव्वं पोग्गलदव्वणिप्पण्णं इदि णाणेण देहादिसव्वदव्वेसु अप्पविब्भमविरहादो अदिंदियं अणिद्देसं सगसंवेदणगोयरोऽहमिच्चादिअवभासणं तस्स सद्दहणेण होदि। जदुत्तं–

यदभावे सुषुप्तोऽहं यद्भावे व्युत्थितः पुनः।
अतीन्द्रियमनिर्देश्यं तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम्॥

(समाधितंत्र 24)

तेण जिणवरकहिदसुत्तब्भासो णिरंतरं अप्पमादेण विणयेण कादव्वो त्ति भावत्थो ॥4॥

उत्थानिका—अह सुत्तत्थस्स जाणमाणो हि सद्दिट्ठी त्ति वण्णेदि–

सुत्तत्थं जिणभणियं जीवाजीवादि-बहुविहं अत्थं।
हेयाहेयं च तहा जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी ॥5॥

टीकार्थ—जो पुरुष सूत्र से सहित है वह संसार में देव, नारक आदि गतियों में पहुँचकर भी विनाश को प्राप्त नहीं होता है। वहाँ पर भी वह आत्महित के कारणभूत ज्ञानभावना में ही रुचि करता है। वह आत्मा नहीं दिखने वाले अपने स्वचेतन प्रत्यक्ष से संसार को नष्ट करता है ''मैं परद्रव्य से भिन्न हूँ'' इस प्रकार से स्वचेतन द्रव्य को जानता है और जो दिखने वाला है वह सब पुद्गल द्रव्य से निष्पन्न है, इस प्रकार ज्ञान के द्वारा देह आदि समस्त द्रव्यों में आत्म विभ्रम से रहित होने के कारण अतीन्द्रिय, अनिर्दिष्ट, स्वसंवेदन गोचर मैं हूँ इत्यादि अवभासन उस जीव को श्रद्धा के द्वारा होता है।

जैसा कि कहा है– ''जिसके अभाव में, मैं सोया हुआ था और जिसके सद्भाव से मैं जागृत हुआ हूँ, ऐसा मैं अतीन्द्रिय पर के द्वारा निर्देशन के अयोग्य, स्वसंवेदन गम्य ही मैं हूँ।''

इस कारण से जिनवर प्रदत्त कथित सूत्र का अभ्यास निरंतर प्रमाद रहित होकर विनय के साथ करना चाहिए, यह भावार्थ है ॥4॥

उत्थानिका—अब सूत्र के अर्थ को जानने वाला ही सम्यग्दृष्टि होता है यह वर्णन करते हैं–

अन्वयार्थ— **(तहा)** उसी प्रकार **(जो)** जो **(जिणभणियं)** जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहे गये **(सुत्तत्थं)** सूत्र के अर्थ को **(जीवाजीवादि बहुविहं अत्थं)** जीवाजीवादि बहुत प्रकार

सूत्रार्थ है वह जिसे जिन ने बताया, जीवादि तत्त्व सब अर्थ हमें दिखाया।
प्राप्तव्य त्याज्य इनमें फिर कौन होते, जो जानते नियम से समदृष्टि होते॥5॥

टीका—जो जाणइ किं? **सुत्तत्थं** सुत्ताणं अत्थं भावो सारो वा। संपहि उवलद्धचउअणुओग-सद्दरयणाणि सुत्ताणि। तत्थ पढमाणुओगस्स सारो खलु चउगइभमणसीलजीवस्स दुक्खसुहाणि संजोगविओगसंबंधणेहदोसफलाणि य पेक्खिऊण संवेगवेरग्गसमाहिमरणभावोवलद्धी। करणाणुओगस्स सारो खलु तिविहलोए अणंताणंतजीवाणमवट्ठाणं पोग्गलाणं परिणमणं धम्मादिदव्वाणं सुद्धत्तं असंखेज्जदीवसमुद्दाणं वित्थारं पल्लसायरसूईघणंगुलादिपमाणेण अदिस्समाणासंखेज्जा-णंतगणणाविण्णाणं च जाणिऊण सव्वण्हुणाणसहावे रुई। चरणाणुओगस्स सारो खलु अणुव्वय-महव्वयादिपरिपालणेण असंखेज्जगुणकम्मणिज्जरकरणं। दव्वाणुओगस्स सारो खलु उहयणएण अप्पवत्थुसहावं जाणिय सुद्धप्पसहावे रमणं। पुणो वि कं? **अत्थं** अर्यते परिच्छिद्यते गुणैः पर्यायैर्वा सोऽर्थो तं। कधंभूदं? **जीवाजीवादि-बहुविहं**। **तहा च हेयाहेयं** किं हेयं चागजोग्गं किं च अहेयं गहणजोग्गं। किं च णिजं परं वा। किं च तक्कालियं आदेयं तिक्कालियं आदेयं वा। किं विसिट्ठं? **जिणभणियं** सुत्तत्थादिपरूवणा जिणेहि कदा। एवं **जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी** सम्मादिट्ठी जीवो होदि ॥5॥

के पदार्थ को **(च)** और **(हेयाहेयं)** हेय और उपादेय को **(जाणइ)** जानता है **(हु)** निश्चय से **(सो)** वह **(सद्दिट्ठी)** सम्यग्दृष्टि है।

टीकार्थ—जो जानता है, क्या जानता है? सूत्रार्थ को। सूत्रों का जो अर्थ, भाव अथवा सार है उसको जानता है। वर्तमान में उपलब्ध चार अनुयोगों की शब्द रचनाएँ सूत्र हैं। उसमें प्रथमानुयोग का सार तो चार गतियों में भ्रमण करने के स्वभाव वाले जीव का दुःख-सुख, संयोग-वियोग, संबंधों से होने वाले स्नेह और द्वेष के फलों को देख करके संवेग, वैराग्य और समाधिमरण भावों की उपलब्धि करना है, यह प्रथमानुयोग का सार है। तीन लोक में अनंतानंत जीवों का अवस्थान है, पुद्गलों का परिणमन है, धर्मादि द्रव्यों का शुद्धपना है, असंख्यात द्वीप समुद्रों का विस्तार है, पल्य, सागर, सूची, घनांगुल आदि के प्रमाण से नहीं दिखाई देने वाले असंख्यात, अनंत गणना का विज्ञान है। इन सबको जान करके सर्वज्ञ ज्ञान के स्वभाव में रुचि करना करणानुयोग का सार है। अणुव्रत, महाव्रत आदि के परिपालन से असंख्यात गुणी कर्म की निर्जरा करना यह चरणानुयोग का सार है। दोनों प्रकार के नयों से आत्म वस्तु के स्वभाव को जान करके शुद्ध आत्म स्वभाव में रमण करना यह द्रव्यानुयोग का सार है। और क्या है ? अर्थ अर्थात् गुणों और पर्यायों से जो जाना जाता है वह अर्थ है। वह अर्थ किस प्रकार का है? जीव-अजीव आदि बहुत प्रकार का है। उसी प्रकार से वह हेय-अहेय स्वरूप है। क्या हेय है ? अर्थात् क्या त्याग के योग्य है ? और क्या अहेय है ? अर्थात् क्या ग्रहण योग्य है ? क्या अपना है ? अर्थात् क्या पराया है? क्या तात्कालिक ग्रहण करने योग्य है ? और क्या त्रैकालिक ग्रहण करने योग्य है ? और वह अर्थ किस विशेषता वाला है ?

उत्थानिका–तं सुत्तं केण पयारेण णादव्वमिदि कहेदि–

जं सुत्तं जिणउत्तं ववहारो तह य जाण परमत्थो।
तं जाणिऊण जोई लहइ सुहं खवइ मलपुंजं ॥6॥

टीका–**जं सुत्तं जिणउत्तं तं ववहारो** ववहारणएण भणियं **तह य परमत्थो** णिच्छयणएण भणियं वि **जाण** तुमं हे भव्वजीव। तस्स णाणेण किं होइ? **सुहं लहइ** परदव्वविरहिदसुद्धप्प-णाणाणुभूदिजणिदाहलादं पावेइ। को पावेइ? **जोई** पंचिंदियसंवुडो परमत्थविदण्हू तिगुत्तिगुत्तो णिव्वियप्पसमाहिकाले णियोवओगस्स उवओगे जुंजमाणो। वुत्तं च–

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहिःस्थितेः।
जायते परमानन्दः कश्चिद्योगेन योगिनः॥
(इष्टोपदेश 47)

जिणभणियं सूत्रों के सूत्रार्थ आदि की प्ररूपणा जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा की गई है इसलिए वह जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहा हुआ है इस प्रकार के सूत्रार्थ को जो जानता है, वह सम्यग्दृष्टि जीव होता है ॥5॥

उत्थानिका–उस सूत्र को किस प्रकार से जानना चाहिए यह कहते हैं–

अन्वयार्थ–**(तह)** उसी प्रकार **(जं सुत्तं)** जो सूत्र **(जिणउत्तं)** जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहा है [उसे] **(ववहारो)** व्यवहार से **(य)** और **(परमत्थो)** परमार्थ से **(जाण)** जानो **(जोई)** योगी **(तं जाणिऊण)** उसको जानकर **(सुहं)** सुख को **(लहइ)** प्राप्त करता है [और] **(मलपुंजं)** मल पुंज को/पाप पुंज को **(खवइ)** नाश करता है।

टीकार्थ–जो सूत्र जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहा हुआ है वह व्यवहारनय से भी कहा गया है तथा परमार्थ अर्थात् निश्चयनय से भी कहा गया है, इस प्रकार से हे भव्य जीव! तुम जानो। उसके ज्ञान से क्या होता है ? सुख की प्राप्ति होती है अर्थात् पर द्रव्यों से रहित शुद्धात्मा के ज्ञान की अनुभूति से उत्पन्न आह्लाद (आनंद) प्राप्त होता है। कौन प्राप्त करता है? योगी प्राप्त करता है। पंचेन्द्रियों को संवृत किया हुआ, परमार्थ को जानने वाला, तीन गुप्तियों से गुप्त, निर्विकल्प समाधि के काल में निज उपयोग को उपयोग में ही जोड़ता हुआ योगी होता है।

कहा भी है–''जो आत्मा के अनुष्ठान में निष्ठ है और जिसके लिए व्यवहार बाहर ही स्थित है उस योगी को इस योग से अर्थात् निर्विकल्प धर्मध्यान और शुक्लध्यान से कोई विशिष्ट परम आनंद उत्पन्न होता है।''

जो व्यावहार परमार्थतया द्विधा है, सर्वज्ञ से कथित सूत्र सुनो! सुधा है।
योगी उसे समझते शिव सौख्य पाते, वे पाप पंकपन पूरण हैं मिटाते॥6॥

जो जोई उहयणयविसयभूदप्पपरिणदिं सम्मं **जाणिऊण** दंसणमोहं उवसमखओवसमिय-खयपयारेण वमिय चरित्तमोहजणिदरागदोसाणुववत्तिपरिहरणट्ठं ववहारणयस्सिदवदसमिदिपरिपालणेण सह णिच्छयणयस्सिदप्परुइभावणापदीदियणुभवणबलेण थिरत्तं लहदि जहा जहा तहा तहा विसयरुइवमणं होदि। जदा णिच्छयविसयभूदप्पसहावे अंतोमुहुत्तं चिट्ठदि तदा केवलणाणसरूव-परमजोदिपयासं उप्पादेदि ववहारणय-विसयस्स सयमेव परिचत्तादो।

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदाङ्के
जिनवचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चै-
रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्त एव॥
(समयसार कलश 4)

अप्पजणिदसुहं **मलपुंजं** कम्ममलबंधं **खवइ**। अप्पमत्तादिगुणट्ठाणेसु सुद्धप्पसरूवे रमणादो जादविसोहिबलेण ट्ठिदिकंडयअणुभागकंडयादिघादविसेसदंसणादो ॥6॥

उत्थानिका—अह आगमविहिदकिरियाविणट्ठो साहू ण होदि त्ति कहेदि–

जो योगी दोनों नयों के विषयभूत आत्म परिणति को समीचीनरूप से जान करके दर्शनमोह का उपशम, क्षयोपशम और क्षय के द्वारा वमन करके चारित्रमोह जनित राग-द्वेष की उत्पत्ति का परिहार करने के लिए व्यवहारनय के आश्रित व्रत, समिति के परिपालन के द्वारा निश्चय नय के आश्रित आत्मरुचि, आत्मभावना, आत्मप्रतीति और आत्मअनुभवन के बल से जैसे-जैसे स्थिरता प्राप्त करता है वैसे-वैसे उसकी विषय रुचि का वमन होता जाता है। जब निश्चयनय के विषयभूत आत्म स्वभाव में अंतर्मुहूर्त तक रुक जाता है, तब केवलज्ञान स्वरूप परम ज्योति के प्रकाश को उत्पन्न करता है उस समय पर व्यवहारनय का विषय स्वयं ही छूट जाता है।

कहा भी है– ''स्यात् पद से अंकित दोनों नयों के विरोध का विनाश करने वाले जिनेन्द्र भगवान् के वचन में जो मोह रहित होकर रमण करते हैं वे शीघ्र ही पुरातन नय पक्षों के विरोध से रहित, परम ज्योति स्वरूप उत्कृष्ट समयसार को देखते हैं।''

आत्मा से उत्पन्न हुआ सुख मलपुंज अर्थात् कर्म बंध के मल को नष्ट कर देता है। अप्रमत्त आदि गुणस्थानों में शुद्धात्मा के स्वरूप में रमण करने से उत्पन्न हुई विशुद्धि के बल से स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात आदि विशेष देखे जाते हैं जो कर्म बंध क्षय के कारण हैं ॥6॥

उत्थानिका—अब आगम में कही हुई क्रियाओं से विनष्ट हुआ जीव साधु नहीं होता है, यह कहते हैं–

सुत्तत्थपयविणट्ठो मिच्छादिट्ठी हु सो मुणेयव्वो।
खेडेवि ण कायव्वं पाणिप्पत्तं सचेलस्स ॥7॥

टीका—जो खु **सुत्तत्थपयविणट्ठो** सुत्तविहिदत्थपदेहि विणट्ठो आयारादिसुत्तकहिदविहाणेण रहिदो **सो हु मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो**। जो पालगीवाहणादीसु विराजमाणो गारवं कुव्वंतो विहरदि सो इरियासमिदिविणट्ठो मिच्छाइट्ठी। जो परगिहम्मि भिक्खं जहादत्तं गेण्हिदव्वमिदि आयारसुत्त-कहिद-एसणसमिदिलक्खणं मोत्तूण आमंतेण परगिहम्मि गदो सगिच्छिदबहुलवणमिरिचसमण्णिद-चडपडविंजणसहिद-मिट्ठाण्णसीयलपेयसेवणं कुणदि सो एसणसमिदिपदविणट्ठो मिच्छाइट्ठी। जो बहुमुल्ल-कीदासंजदजणाकस्सणकारणभूदगड्डियसरिसकडादीसु सयदि चिट्ठदि तेहिं सगंगं आवरदि सो अचेलक्कफासिंदयरोहापरिग्गहमहव्वदपदविणट्ठो मिच्छाइट्ठी। जो सयं धणवाहण-दासदासीपरिग्गहेण सह विहरइ सो णिग्गंठपदविणट्ठो मिच्छाइट्ठी। जो गिहत्थजणेसु संबंधकारण-भूदपरोप्परालावकरणट्ठं दूरसंचारसड्ढचित्तहेदुभूदोवगरणाणं पओगं कुणदि सो मुणिभेसे गिहत्थो एव सव्वपावकारण-भूदोवगरणगिण्हादो वीयरायपदविणट्ठो मिच्छादिट्ठी। तस्स मुणिभेसधारगस्स

अन्वयार्थ— **(सुत्तत्थपयविणट्ठो)** सूत्र के अर्थ और पद को विनष्ट करता है **(हु)** निश्चय से **(सो)** वह **(मिच्छादिट्ठी)** मिथ्यादृष्टि **(मुणेयव्वो)** जानना चाहिए **(सचेलस्स)** वस्त्र सहित के लिए **(खेडेवि)** खेल में भी **(पाणिप्पत्तं)** पाणिपात्र में भोजन **(ण कायव्वं)** नहीं करना चाहिए।

टीकार्थ—जो सूत्र के अर्थ और पद से रहित है अर्थात् आचार आदि सूत्र में कहे विधान से जो रहित है वह मिथ्यादृष्टि जानना चाहिए। जो पालकी, वाहन आदि में विराजमान होता हुआ, गारव करता हुआ विहार करता है, वह ईर्यासमिति से विनष्ट मिथ्यादृष्टि है। जो दूसरों के घर में भिक्षा जैसे दी जाती है वैसे ही ग्रहण करने योग्य है, इस प्रकार आचार सूत्र में कथित एषणासमिति के लक्षण को छोड़कर के आमंत्रण से परगृह में गया हुआ, अपनी इच्छा अनुसार बहुत नमक-मिर्च से सहित चटपटे व्यंजनों से सहित मिष्ठान्न शीतल-पेय पदार्थों का सेवन करता है वह एषणासमिति रूपी पद से विनष्ट हुआ मिथ्यादृष्टि है। जो बहुत मूल्य से खरीदे जाने वाले असंयत जनों के लिए आकर्षण उत्पन्न करने वाले गद्दी सदृश चटाई आदि में शयन करता है, बैठता है, उन बहुमूल्य वस्तुओं से अपने शरीर को आवरित करता है वह अचेलक्य और स्पर्शन इन्द्रियनिरोध, अपरिग्रह महाव्रत के पद से विनष्ट हुआ मिथ्यादृष्टि है। जो स्वयं धन, वाहन, दासी-दास परिग्रह के साथ

विश्वास शास्त्र पर भी नहिं धार पाते, होते सवस्त्र पद भ्रष्ट कुधी कहाते।
माने तथापि निज को मुनि, ध्यान देवो, आहार भूल उनको कर में न देवो ॥7॥

सचेलस्स सपरिग्गहस्स **खेडे वि** कीडाए वि **पाणिप्पत्तं** सगहत्थबद्धांजुलिपत्ते भोयणं **ण कायव्वं** णिग्गंथवीयरायमग्गस्स विराहणादो समणोचिदगुणाणमहावादो वा। तहेव गिहत्थेहिं तस्स पाणिपत्ते भोयणं ण दादव्वं पावाणुमोदणादो ॥7॥

उत्थानिका—अह सुत्तत्थपदविणट्ठो संसारत्थो होदि त्ति कहेदि–

हरिहरतुल्लो वि णरो सग्गं गच्छेइ एइ भवकोडी।
तह वि ण पावइ सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो ॥8॥

टीका—जो **णरो हरिहरतुल्लो वि** हवे–अइधणियजणेहि पदत्तधणेण बहुमुल्लवत्थूणि सेवमाणो महासेट्ठिमहंतसरिसपदेस्सरेण सयं उक्कट्ठं मण्णमाणो अग्गभवे **सग्गं गच्छेइ** जदि पुण्णकम्मबंधो अप्पम्मि हवे। पच्छा तं पुण्णफलं भुंजिय **भवकोडी एइ** चउग्गइभवभमणं करेदि। **तह वि ण सिद्धिं** अप्पणो उवलद्धिं मोक्खं वा ण **पावइ। पुणो संसारत्थो भणिदो** संसारजणिदजम्ममरण–

विहार करता है, वह निर्ग्रंथ पद से विनष्ट हुआ मिथ्यादृष्टि है। जो गृहस्थ जनों में संबंध के लिए कारणभूत परस्पर आलाप करने के लिए दूर संचार शब्द (दूर तक संचार करने वाले) और चित्र पहुँचाने वाले उपकरण आदि का प्रयोग करता है, वह मुनिभेष में गृहस्थ ही है क्योंकि सभी पाप के कारणभूत उपकरण का ग्रहण करने से वीतराग पद से विनष्ट हुआ वह मिथ्यादृष्टि है। मुनिभेष को धारण करने वाले वस्त्र से सहित, परिग्रह से सहित, उसके लिए खेल में अर्थात् क्रीड़ा में भी पाणीपात्र में भोजन नहीं करना चाहिए क्योंकि उसने निर्ग्रंथ वीतरागमार्ग की विराधना की है, अथवा श्रमणोचित्त गुणों का उसमें अभाव है। इसी प्रकार से गृहस्थों के द्वारा भी उसको पाणी पात्र में भोजन नहीं देना चाहिए क्योंकि वह गृहस्थ भी पाप की अनुमोदना करने वाला होता है ॥7॥

उत्थानिका—अब सूत्रार्थ के पद से विनष्ट हुआ संसारस्थ होता है यह कहते हैं–

अन्वयार्थ— [जो सूत्र के अर्थ से रहित है वह] (**णरो**) मनुष्य (**हरिहरतुल्लो वि**) हरिहर [विष्णु और रुद्र] तुल्य भी (**सग्गं**) स्वर्ग को (**गच्छेइ**) जाता है (**भवकोडी**) करोड़ भव (**एइ**) प्राप्त करता है। (**तह वि**) फिर भी (**सिद्धिं**) सिद्धि को (**ण पावइ**) प्राप्त नहीं करता (**पुणो**) पुनः (**संसारत्थो**) संसारी (**भणिदो**) कहा जाता है।

टीकार्थ—जो मनुष्य हरिहर के समान भी हो अर्थात् अतिधनवान् जनों के द्वारा प्रदत्त धन से बहुमूल्यवान् वस्तु का सेवन करता हुआ महान् श्रेष्ठी, महंत सदृश पदों के ऐश्वर्य से स्वयं अपने आपको उत्कृष्ट मानता है वह अगले भव में स्वर्ग को जाता है। यदि पुण्यकर्म का बंध आत्मा में हो तो बाद में वह पुण्यफल का भोग करके करोड़ों भवों में अर्थात् चतुर्गति में भवभ्रमण करता है,

---

उत् सूत्र पा हरिहरादिक से प्रतापी, जा स्वर्ग कोटि भव में रुलते तथापि।
स्थाई नहीं सहज सिद्धि विशुद्धि पाते, संसार के पथिक हो दुख वृद्धि पाते ॥8॥

संजोग-विओगादिदुक्खसुहफलाणुहवणादो ॥8॥

उत्थानिका—अह को मिच्छत्तं गच्छेदि त्ति परूवेदि–

उक्किट्ठसीहचरियं बहुपरियम्मो य गरुयभारो य।
जो विहरइ सच्छंदं पावं गच्छदि होदि मिच्छत्तं ॥9॥

टीका—को वि समणो **उक्किट्ठसीहचरियं** गच्छेदि पावेदि। जहा–सव्वरसपरिच्चागी, एयदोतियादिदिणंतरेण भुंजेदि रत्तीए णो सयेदि अइकट्ठेण जदा कदा वित्तिपरिसंखाए विहिमुवलब्भदि तदा अप्पं भुंजदि सव्वपरिचयं चत्ता एयंते गुहाकंदरपव्वददूरखेत्तेसु वसइ बहुवासरेण मोणी जल्लमल्ललित्तसरीरो ण कं वि पासइ ण केण सह वक्कइ आदावणतवेण गिम्हे सीदकाले बाहिरदेसे

फिर भी वह आत्मा की उपलब्धिरूप सिद्धि अर्थात् मोक्ष को प्राप्त नहीं करता है, वह जीव संसारी कहा गया है क्योंकि संसार में उत्पन्न होने वाले जन्म-मरण, संयोग-वियोग आदि दुःख-सुख फलों का ही वह अनुभवन करता रहता है ॥8॥

उत्थानिका—अब मिथ्यात्व को कौन प्राप्त होता है इसकी प्ररूपणा करते हैं–

अन्वयार्थ—**(जो)** जो मुनि **(उक्किट्ठसीहचरियं)** सिंह के समान निर्भय रहकर उत्कृष्ट चर्या को धारण करता है **(बहुपरियम्मो य)** बहुत व्रत उपवासादि परिकर्म को करता है **(गरुयभारो य)** भारी भार सहित **(सच्छंदं)** स्वच्छन्द **(विहरइ)** विहार करता है [वह] **(पावं)** पाप को **(गच्छदि)** प्राप्त होता है **(मिच्छत्तं)** मिथ्यात्व को **(होदि)** प्राप्त होता है।

टीकार्थ—जो कोई भी श्रमण उत्कृष्ट सिंह के समान चर्या करता है जैसे कि वह सर्वरस का परित्यागी है, एक-दो-तीन आदि दिनों के बाद भोजन करता है, रात को शयन नहीं करता है, अतिकष्ट से जब कभी वृत्तिपरिसंख्यान के द्वारा विधि उपलब्ध होती है तब थोड़ा सा भोजन करता है, सभी प्रकार के परिचयों को छोड़ करके एकांत में गुफा, कंदर, पर्वत आदि दूर क्षेत्रों में निवास करता है, बहुत दिनों तक मौन धारण करता है, जल्ल-मल्ल से लिप्त शरीर वाला होता है, किसी को नहीं देखता है, किसी के साथ बोलता नहीं है, आतापन तप से ग्रीष्मकाल में, शीतकाल में बाहरी स्थान में, वर्षाकाल में वृक्षमूल में रहकर तप करता है। इसके साथ बहुत परिकर्म वाला है अर्थात् अनेक प्रकार के तप, गुप्ति, समिति, सामायिक, संयम के परिपालन की विधि, सूक्ष्म हिंसा का परिहार करने के लिए योनिस्थान आदि को जानता हुआ आचरण करने वाला है। गुरुतर भार वाला है अर्थात् अनेक दीक्षा, पंचकल्याणक, प्रतिष्ठाएँ, लौकिक जनों के सम्मोहन करने के लिए

निर्भीक सिंह सम यद्यपि हैं तपस्वी, आतापनादि तपते गुरु हों यशस्वी।
स्वच्छन्द हो विचरते यदि, पाप पाते, मिथ्यात्व धार कर वे भवताप पाते ॥9॥

वरिसायाले रुक्खमूले तप्पदि। **बहुपरियम्मो य** अणेयविहतवगुत्तिसमिदिसामाइयसंयमपरिपालण-विहि-सुहुमहिंसापरिहारट्ठजोणिट्ठाणादिकम्मो य। **गुरुयभारो य—**अणेयदिक्खापंचकल्लाणपदिट्ठा-लोगिगजण- संमोहणट्ठजोइसियपाणायामाउव्वेदगिहवावार पबंधणकुसलदा अणेयभासापरिण्णाणं महाजणसमूहस्स विस्सासपत्तदा जिणमंदिरणिम्माणा-दिवात्थुकलापवीणो य। इच्वेवमादिबहुगुण-कुसलो वि जदि **सच्छंदं विहरदि** गुरुआणाए विणा जहा इच्छिददेसगमणवरिसाजोगादिकरणं पायच्छित्तादितवोकम्मं विणा हि जीवणं जिणसुत्तस्स सद्दहणेण विणा जीवाजीवादिपदत्थाणं णाणेण विणा तेक्कालियोवादेयभूदं णिजसुद्धप्पणाणदंसणसहावं तक्कालियोवादेयभूदं वीयरायजिणिंद-भत्तिसत्थब्भासगुरुसेवाणुरागं विणा हि मणसा सव्वकिरियाकरणं सो **पावं गच्छदि** पावबंधं कुणदि **मिच्छत्तं होदि** मिंच्छत्तस्साहावो ण हवे त्ति भावत्थो ॥9॥

उत्थानिका—अह को खलु मोक्खमग्गो त्ति कहेदि–

णिच्चेलपाणिपत्तं उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं।
एक्को हि मोक्खमग्गो सेसा य अमग्गया सव्वे ॥10॥

ज्योतिष, प्राणायाम, आयुर्वेद, ग्रह, व्यापार प्रबंधनों में कुशलता है, अनेक भाषाओं का परिज्ञान है, महाजन समूह का विश्वास पात्र है। जिनमंदिर निर्माण आदि वास्तुकला में निपुण है, वह गुरुतर भार वाला है। इत्यादि बहुत गुणों में कुशल होने पर भी यदि गुरुआज्ञा के बिना स्वच्छंद रहता है, यथा इच्छित स्थान में गमन करता है, वर्षायोग आदि करता है, प्रायश्चित्तादि तपः कर्म के बिना ही जीवन जीता है और जिनसूत्र के श्रद्धान के बिना, जीव, अजीव आदि पदार्थों के ज्ञान के बिना, त्रैकालिक उपादेयभूत निज शुद्धात्मा के ज्ञान, दर्शन स्वभाव के बिना और तात्कालिक उपादेयभूत वीतराग जिनेन्द्र की भक्ति, शास्त्राभ्यास, गुरु सेवा का अनुराग इन सबके बिना ही अपने मन से समस्त क्रियाओं को करने वाला है, वह पाप को प्राप्त होता है अर्थात् पाप का बंध करता है, मिथ्यादृष्टि होता है, उसके मिथ्यात्व का अभाव नहीं होता है, यह भावार्थ है ॥9॥

उत्थानिका—अब वास्तव में कौन मोक्षमार्गी है यह कहते हैं–

अन्वयार्थ—(परमजिणवरिंदेहिं) तीर्थंकर परम जिनेन्द्रदेव ने **(णिच्चेलपाणिपत्तं)** निर्ग्रन्थ मुनि को ही पाणिपात्र में आहार लेने का **(उवइट्ठं)** उपदेश दिया है [वह] **(एक्को हि)** एक निर्ग्रन्थ मुद्रा ही **(मोक्खमग्गो)** मोक्षमार्ग है **(य)** और **(सेसा)** शेष **(सव्वे)** सभी **(अमग्गया)** अमार्ग है।

होना दिगम्बर व अम्बर त्याग देना, आहार होकर खड़े कर पात्र लेना।
है मोक्षमार्ग यह शेष कुमार्ग सारे, ऐसा जिनेश मत है बुध मात्र धारें॥10॥

टीका—परमजिणवरिंदेहिं उवइट्ठं कहिदं । किं तं? **णिच्चेलपाणिपत्तं** णिच्चेलस्स णिग्गंथस्स एव **पाणिपत्तं** पाणिपत्ते भोयणं। सो **एक्को हि मोक्खमग्गो** सक्खियं अरिहंतमुद्दासरूवत्तादो। तेण विणा अण्णे अणेयविहपडधरा **सेसा य सव्वे अमग्गया** अरिहंतमुद्दासरूवमोक्खमग्गस्स विवरीदत्तादो ॥10॥

उत्थानिका—अह किं णिच्चेलमेत्तस्स दियंबररूवस्स मोक्खमग्गत्तं हवे अहवा को वि विसेसो त्ति पुच्छे भणदि–

जो संजमेसु सहिओ आरंभपरिग्गहेसु विरओ वि।
सो होइ वंदणीओ ससुरासुरमाणुसे लोए ॥11॥

टीका—जो खलु दियंबरो भूदो वि **संजमेसु** इंदियपाणसंयमेण **सहिओ**। **आरंभपरिग्गहेसु** वि आरंभो छक्कायवहकरो परिग्गहो आरंभजणिदावावारेसु मुच्छापरिणामो तेसु **विरओ वि**।

टीकार्थ—परम जिनवरों के द्वारा जो कहा गया है, क्या कहा गया है? ''णिच्चेलपाणिपत्तं''- अर्थात् जो वस्त्र से रहित निर्ग्रन्थ हैं वह ही पाणिपात्र में भोजन करे। वह एक ही मोक्षमार्ग है क्योंकि साक्षात् अरिहंत मुद्रा का वह स्वरूप है। उसके बिना अन्य अनेक प्रकार के वस्त्रों को धारण करने वाले शेष जितने भी जीव हैं, वह सब अमार्गी हैं क्योंकि अरिहंत मुद्रा स्वरूप मोक्षमार्ग के विपरीत हैं ॥10॥

उत्थानिका—अब क्या वस्त्र मात्र रहित दिगम्बररूप मोक्ष का मार्ग होता है अथवा कुछ और विशेष भी होता है ? इस प्रकार पूछने पर कहते हैं–

अन्वयार्थ— (जो) जो मुनि **(संजमेसु सहिओ)** संयम से सहित **(आरंभपरिग्गहेसु विरओ)** आरम्भ और परिग्रह से विरत है **(सो)** वह **(ससुरासुरमाणुसे)** सुर-असुर और मनुष्यों सम्बन्धी **(लोए वंदणीओ)** लोक में वंदनीय **(होइ)** होता है।

टीकार्थ—जो दिगम्बर होकर के भी इन्द्रिय और प्राणसंयम वाले संयमों से सहित होता है छहकाय की विराधना करना आरंभ कहलाता है और आरंभ जनित व्यापारों में मूर्च्छा परिणाम होना परिग्रह है। उन आरंभ और परिग्रह से भी जो विरत होता है। विषयों की आशा के वशीभूत हुआ दोनों प्रकार के संयमों की तथा आरंभ और परिग्रह से सहित होता हुआ अहिंसा और अपरिग्रह व्रत की विराधना करता है। इसलिए ही कहा है–

''जो विषयों की आशा से रहित है, आरंभ और परिग्रह से रहित है, ज्ञान-ध्यान और तप में लीन है वह तपस्वी ही प्रशंसा को प्राप्त है।''

संयुक्त साधु नियमों यम संयमों से, उन्मुक्त बाधक परिग्रह संगमों से।
हो वन्द्य वो नर सुरासुर लोक में हैं, ऐसा कहें जिनप, नाथ त्रिलोक के हैं ॥11॥

विसयासावसीभूदो दुविह संजमं आरंभपरिग्गहसहिदो पुण अहिंसापरिग्गहवदं विराहेदि। तेणेव वुत्तं–

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते॥

(रत्नकरण्डक श्रावकाचार 10)

सो समणो **लोए ससुरासुरमाणुसे** कप्पवासियसोहम्मादिदेवा सुरा, भवणवासियदेवपमुहा असुरा, चक्कवट्टियादिओ माणुसा तेहिं सहिदेहि **वंदणीओ होइ**। एदेण मूलगुणसहिदसमणस्स मोक्खमग्गत्तं भणिदं भावलिंगलक्खणादो ॥11॥

उत्थानिका—अह उत्तरगुणसहिदसमणस्स कित्तणं कीरदि–

जे बावीसपरीसह सहंति सत्तीसएहिं संजुत्ता।
ते होंति वंदणीया कम्मक्खयणिज्जरा साहू ॥12॥

टीका—जे समणा। **सत्तीसएहिं संजुत्ता** सारीरियमाणसियादिबहुविहसत्तीए सहिदा वीरियंतरायकम्मखओवमसविसेसादो कम्मेहिं पत्तखओवसमसत्तविसेसस्स अब्भासेण संजमसहि–

वह श्रमण ही लोक में सुरासुर-मनुष्यों से वंदनीय है, कल्पवासी सौधर्म आदि देव सुर कहलाते हैं, भवनवासीदेव प्रमुख असुर हैं और चक्रवर्ती आदि मनुष्य हैं, इन सभी से वह वंदनीय होता है इसलिए मूलगुणों से सहित श्रमण को ही मोक्षमार्गपना कहा गया है क्योंकि वही भावलिंग का लक्षण है ॥11॥

उत्थानिका—अब उत्तर गुण से सहित श्रमण का कीर्तन करते हैं–

अन्वयार्थ— (**जे**) जो (**सत्तीसएहिं**) सैकड़ों शक्तियों से (**संजुत्ता**) सहित होते हुए (**बावीसपरीसह**) बाईस परीषहों को (**सहंति**) सहते हैं (**कम्मक्खयणिज्जरा**) कर्मक्षय तथा निर्जरा करते हैं (**ते**) वे (**साहू**) साधु (**वंदणीया**) वंदनीय (**होंति**) होते हैं।

टीकार्थ—जो श्रमण शारीरिक, मानसिक आदि बहुत प्रकार की शक्तियों से सहित होते हुए वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम की विशेषता से कर्मों के द्वारा प्राप्त हुए क्षयोपशम की शक्ति विशेष के अभ्यास के द्वारा संयम सहित तप की रुचि के बल से वर्धमान होने से क्षुधा, तृषा आदि बाईस परीषहों को सहन करते हैं अर्थात् शरीर और मन की इच्छा के निरोध से दमन करते हैं, वे कर्मों का क्षय और निर्जरा करने वाले साधु होते हैं। परीषहों को सहन करते हुए भी अध्यात्मयोग से विशुद्धि के बल से शुद्धात्मस्वरूप का ध्यान करने वाले होते हैं क्योंकि विशुद्धि के बल से कर्मों की क्षयरूप निर्जरा होती है।

बाईस दुस्सह परीषह-यातनायें, पूरा लगा बल सहें बल ना छिपायें।
हैं कर्म नष्ट करने रत नग्न देही, वे वन्द्यनीय मुनि, वन्दन हो उन्हें ही॥12॥

दतवरुइबलेण वड्ढमाणत्तादो वा। किं कुव्वंति? **सहंति** तणमणवंछाणिरोहेण दमंति। के? **वावीसपरीसह** क्षुधातिसादीओ। **ते कम्मक्खयणिज्जरा साहू** कम्माणं खयं णिज्जरा य जे साहवो कुणंति ते। परीसहसहंता वि अज्झप्पजोगेण सुद्धप्पसरूवं झायंता विसोहिबलेण कम्मक्खयणिज्जरणादो। वुत्तं च–

परीषहाद्यविज्ञानादास्रवस्य निरोधिनी।
जायतेऽध्यात्मयोगेन कर्मणामाशु निर्जरा॥

(इष्टोपदेश 24)

वंदणीया होंति सिद्धादिभत्तिपुव्वियं वंदणं कादूण णमोत्थु णिवेदणिज्जा ॥12॥

उत्थानिका–अह णिच्चेलपाणिपत्तेण विणा जे मोक्खमीहंता ते कधं आदरणिज्जा त्ति कहेदि–

अवसेसा जे लिंगी दंसणणाणेण सम्मसंजुत्ता।
चेलेण य परिग्गहिया ते भणिया इच्छणिज्जा य ॥13॥

टीका–अवसेसा जे लिंगी उक्कट्ठसावयादओ। ते **दंसणणाणेण सम्मसंजुत्ता** सम्मदंसण-सम्मणाणेण सहिदा। **चेलेण** वत्थेण **य परिग्गहिया ते इच्छणिज्जा य** इच्छाकारजोग्गा 'इच्छामि' त्ति सद्देण घोसिदा होंति त्ति **भणिया** ॥13॥

कहा भी गया है–''परीषह आदि का विज्ञान नहीं होने से आस्रव को रोकने वाली कर्मों की निर्जरा अध्यात्म योग से शीघ्र ही प्राप्त होती है।''

वे श्रमण ही सिद्धभक्ति पूर्वक वंदना करके नमोऽस्तु के निवेदन योग्य होते हैं ॥12॥

उत्थानिका–अब निश्चेल पाणिपात्र के बिना जो मोक्ष की इच्छा करते हैं वे किस प्रकार से आदरणीय हो सकते हैं यह कहते हैं–

अन्वयार्थ–(अवसेसा जे लिंगी) मुनिमुद्रा के सिवाय जो अन्य लिंगी हैं **(दंसणणाणेण सम्मसंजुत्ता)** सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से संयुक्त हैं **(य)** तथा **(चेलेण परिग्गहिया)** वस्त्ररूपी परिग्रह से सहित हैं **(ते)** वे **(इच्छणिज्जा य)** इच्छाकार के योग्य **(भणिया)** कहे गये हैं।

टीकार्थ–शेष बचे हुए जो लिंगी हैं वे उत्कृष्ट श्रावक आदि हैं, वे दर्शन और ज्ञान से समीचीन रूप से संयुक्त होते हैं अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से सहित होते हैं, वे वस्त्र से परिगृहीत होते हैं, इसलिए इच्छाकार के योग्य होते हैं अर्थात् इच्छामि इस शब्द के द्वारा उन्हें आदर दिया जाता है, इस प्रकार से वे इच्छाकार के योग्य कहे गए हैं ॥13॥

सम्यक्त्व बोध युत हैं जिनलिंगधारी, जो शेष देश-व्रत पालक वस्त्रधारी।
'इच्छामि' मात्र करने बस पात्र वे हैं, ऐसा नितान्त कहते जिन-शास्त्र ये हैं॥13॥

उत्थानिका—अह इच्छायारस्स माहप्पं कहेदि–

इच्छायारमहत्थं सुत्तठिओ जो हु छंडए कम्मं।
ठाणे ठिय सम्मत्तो परलोयसुहंकरो होदि ॥14॥

टीका—**जो हु इच्छायारमहत्थं** इच्छायारस्स महत्थं जाणादि धारेइ वा सो सच्छंदं ण विहरदि। सो **सुत्तठिओ** सुत्ते जहा उक्कट्ठसावयस्स आयरणं विहिदं तम्मि ठिओ **कम्मं छंडए** असंखेज्जगुणकम्माणं णिज्जरणं कुणदि पंचसूणादिगिहकम्मपरिच्चागादो। **ठाणे** एयारसपडिमाठाणे पंचमगुणट्ठाणे वा **ट्ठिय सम्मत्तो** सम्मत्तपुव्वतप्पडिमाजोग्गसंजमाचरणसहिदो त्ति। सो **परलोयसुहंकरो** होदि परलोए महड्ढियदेवेसु सोलससग्गपज्जंतेसु उववज्जदि। तत्थ चुओ अप्पभवेसु मोक्खं लहदि ॥14॥

उत्थानिका—अह पडिमादिपालणपरो जीवो वि संसारत्थो कदा होदि त्ति कहेदि–

उत्थानिका—अब इच्छाकार का माहात्म्य कहते हैं–

अन्वयार्थ—**(जो)** जो **(हु)** निश्चय से **(सुत्तठिओ)** सूत्र में स्थित **(इच्छायारमहत्थं)** इच्छाकार के अर्थ को [जानते है] **(कम्मं)** कर्म को **(छंडए)** छोड़ता है **(ठाणे सम्मत्तं)** सम्यक्त्व पद में **(ठिय)** स्थित होता है [वह] **(परलोयसुहंकरो)** परलोक में सुखी **(होदि)** होता है।

टीकार्थ—जो इच्छाकार के माहात्म्य को जानता है और धारण करता है वह स्वच्छंद विहार नहीं करता है। वह सूत्र में स्थित हुआ अर्थात् सूत्र में जैसा उत्कृष्ट श्रावक का आचरण कहा गया है, उसी में स्थित हुआ असंख्यातगुणी कर्मों की निर्जरा करता है क्योंकि पंचसूना आदि गृहकर्म का वह परित्याग कर देता है। ग्यारहवीं प्रतिमा के स्थान में अथवा पंचम गुणस्थान में वह सम्यक्त्व के साथ स्थित होता है क्योंकि सम्यक्त्व पूर्वक ही उस प्रतिमा के योग्य संयमाचरण से वह सहित होता है। वह परलोक में सुख करने वाला होता है परलोक अर्थात् सोलह स्वर्ग पर्यन्त महर्धिक देवों में वह उत्पन्न होता है और वहाँ से च्युत होकर के थोड़े ही भवों में मोक्ष प्राप्त करता है ॥14॥

उत्थानिका—अब प्रतिमा आदि के पालन में तत्पर हुआ जीव भी कब संसारस्थ होता है यह कहते हैं–

वे क्षुल्लकादि गृहकर्म अवश्य त्यागे, इच्छा सुकार पद को समझे सुजागे।
शास्त्रानुसार प्रतिमाधर शुद्धदृष्टी, पाते सुरेश पद भी शिवसिद्धि सृष्टि ॥14॥

अह पुण अप्पा णिच्छदि धम्माइं करेइ णिरवसेसाइं।
तह वि ण पावइ सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो ॥15॥

टीका—अह पुण सो **णिरवसेसाइं धम्माइं** अणुव्वयपालण-दिगवददेसवदणत्थदंडविरदि-सामाइयपोसहोववासातिहिदाणादिसव्वधम्मकिरियाकम्माइं **करेइ अप्पा णिच्छदि** अप्पविसोहिकरण-भावणाए सुद्धप्पज्झाणबलेण य परमजोदिसरूवाणंतणाणसुहदंसणादिगुणभरियाप्पाणं ण भावेदि **तह वि ण सिद्धिं पावइ पुणो** अवि दु **संसारत्थो भणिदो** संसारे एव चिट्ठदि अप्पभावणाए विणा मोक्खस्साणुववत्तीदो ॥15॥

उत्थानिका—अह अप्पसद्दहणं पडि पउंजेदि-

एएण कारणेण य तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण।
जेण य लहेह मोक्खं तं जाणिज्जइ पयत्तेण ॥16॥

टीका—एएण कारणेण य जदो परमट्ठसरूवप्पभावणाए विणा वदणियमादीणं सहलत्तं ण

अन्वयार्थ—(अह) अथवा **(अप्पा)** आत्मा को **(पुण)** तो **(णिच्छदि)** नहीं चाहता है **(णिरवसेसाइं)** सम्पूर्ण शेष **(धम्माइं)** धर्मों को **(करेइ)** करता है **(तह वि)** फिर भी **(सिद्धिं)** सिद्धि को **(ण पावइ)** प्राप्त नहीं करता **(पुणो)** पुनः **(संसारत्थो)** संसारी **(भणिदो)** कहा जाता है।

टीकार्थ—अह पुण सो और वह पुनः निरवशेष धर्म को करता है अर्थात् अणुव्रत का पालन, दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदण्ड विरति, सामायिक, प्रोषध उपवास, अतिथि दानादि सभी धर्म और क्रिया कर्म करता है किन्तु आत्मा की इच्छा नहीं करता है। आत्मा की विशुद्धि करने वाली भावना के द्वारा शुद्धात्म ध्यान के बल से परमज्योति स्वरूप अनंतज्ञान, सुख, दर्शन आदि गुणों से भरे हुए आत्मा की वह भावना नहीं करता है तो भी वह सिद्धि को प्राप्त नहीं करता है किन्तु वह संसार में स्थित ही रहता है अर्थात् संसार में ही चेष्टा करता है क्योंकि आत्म भावना के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है ॥15॥

उत्थानिका—अब आत्म श्रद्धान के प्रति जोड़ते हैं–

अन्वयार्थ—(य) और **(एएण कारणेण)** इस कारण से **(तं अप्पा)** उस आत्मा का **(तिविहेण)** त्रिविधि से अर्थात् मन, वचन, काय से **(सद्दहेह)** श्रद्धान करो **(य)** और **(जेण)**

इच्छादिकार करना निज-चाह होना, इच्छा जिन्हें न निज की गुम-राह होना।
वे धर्म की सब क्रिया करते भले ही, संसार दुःख न टले भव में रुले ही ॥15॥
तू काय से वचन से मन से रुची से, श्रद्धान आत्म पर तो कर रे इसी से।
तू जान आत्म भर को निज यत्न द्वारा, पा मोक्ष लाभ फलतः ध्रुव रत्न प्यारा ॥16॥

होदि तेण कारणेण। **तिविहेण** मणवचिकाएण **तं अप्पा सद्दहेह**। **जेण** अप्पसद्दहणेण **य लहेह मोक्खं तं** अप्पा **पयत्तेण** सद्धाभावणा–णाणज्झाणपयारेण **जाणिज्जइ**। एत्थ चोदगो–सुद्धप्पसरूवस्स सद्धहणं अणुहवणं विणा वदणियमादि–संजमाचरणं णिप्फलं होदि। वदणियमादिपालणरूववववहार–चरित्तेण ण मोक्खो हवे। तेण सरूवाचरणचारित्तं खलु मोक्खस्स कारणं। तमेव णिच्छयचारित्तं। तदो सुद्धप्पसरूव–सद्दहणेण सरूवाचरणचारित्तं णिच्छयचारित्तं कादव्वं किमण्णेण अणेयविहववहार–चरित्तेणत्ति? तण्ण जुत्तं वुत्तं। तं जहा–सुद्धप्पसरूवस्स सद्दहणं अणुहवणं च दोण्णि भिण्णकज्जाणि। सद्दहणं दु अविरद–सम्मादिट्ठिणो संजमासंजमस्स संजमस्स होदि, अणुहवणं पुण संजदस्स अप्पमत्तगुणट्ठाणादीसु झाणकाले एव होदि। जो खलु वदणियमादिसंजमाचरणं सुद्धप्पसरूवस्स सद्दहणेण सह पालेदि तस्स ववहारचारित्तेण वदणियमादिपालणं सण्णिदं होदि। तं च मोक्खस्स कारणं वि हवे। जो पुण सुद्धप्पसरूवसद्दहणेण विणा वि वदणियमादिपालणं कुणदि तस्स ववहारचारित्तं ण मोक्खस्स कारणं हवे। एवं ववहारचारित्तं दुविहं णादव्वं। अदो ववहारचारित्तेण कम्मणिज्जरणादियं

जिससे **(मोक्खं)** मोक्ष को **(लहेह)** प्राप्त करे **(तं)** उसको **(पयत्तेण)** प्रयत्न पूर्वक **(जाणिज्जइ)** जानना चाहिए।

टीकार्थ—इसी कारण से चूँकि परमात्म स्वरूप की भावना के बिना व्रत, नियम आदि सफल नहीं होते हैं इसलिए मन, वचन और काय तीनों प्रकार से आत्मा की श्रद्धा करनी चाहिए। जिस आत्म श्रद्धान से जीव मोक्ष को प्राप्त करता है, उस आत्मा को प्रयत्न पूर्वक श्रद्धा भावना, ज्ञान–ध्यान के प्रकारों से जानना चाहिए। यहाँ पर कोई पूछता है कि शुद्धात्मस्वरूप के श्रद्धान और अनुभवन के बिना व्रत, नियम आदि रूप जो संयमाचरण है वह निष्फल है ? व्रत, नियम आदि पालन रूप व्यवहार चारित्र से मोक्ष नहीं होता है, इसलिए स्वरूपाचरण चारित्र ही वास्तव में मोक्ष का कारण है, वह ही निश्चयचारित्र है इस कारण से शुद्धात्मस्वरूप के श्रद्धान से स्वरूपाचरण चारित्र, निश्चय चारित्र कर लेना चाहिए, अन्य अनेक प्रकार के व्यवहारचारित्र से क्या प्रयोजन है? **समाधान**—ऐसा कहना आपका ठीक नहीं है, स्पष्टीकरण इस प्रकार है—शुद्धात्म स्वरूप का श्रद्धान और उसका अनुभवन ये दोनों ही भिन्न कार्य हैं। श्रद्धान तो अविरत सम्यग्दृष्टि जीव को, संयमासंयमी को और संयमी को भी होता है किन्तु शुद्धात्मस्वरूप का अनुभवन तो अप्रमत्त गुणस्थानों आदि में संयमी को ध्यान काल में ही होता है। जो व्रत, नियम आदि संयमाचरण को शुद्धात्मस्वरूप की श्रद्धान के साथ पालन करता है उसके लिए व्रत, नियम आदि का पालन व्यवहारचारित्र कहा जाता है। वह व्यवहारचारित्र मोक्ष का कारण भी होता है किन्तु जो शुद्धात्मस्वरूप के श्रद्धान के बिना ही व्रत, नियम आदि का पालन करता है उसका व्यवहारचारित्र मोक्ष का कारण नहीं होता है, इस प्रकार व्यवहारचारित्र को दो प्रकार का जानना चाहिए। अतः व्यवहारचारित्र से कर्मनिर्जरा आदि नहीं होती है, इस प्रकार का एकांत नहीं मानना चाहिए क्योंकि उस व्यवहारचारित्र के बिना निश्चयचारित्र रूप

ण होदि त्ति एयंतेण ण मंतव्वं तेण विणा णिच्छयचारित्तरूवकज्जस्साणुववत्तीदो। सुद्धप्पसरूवस्साणुहवणं दु णिच्छयचारित्तं। तमेव सरूवाचरणचारित्तं जहाक्खादचारित्तं वा भण्णदे। तेणेव मोक्खो होइ। गिहत्थाणं गुत्तिसमिदिवदादि-रूववववहारचारित्तस्साहावादो णिच्छयचारित्तस्स वि पत्ती णत्थि। तेण ववहारचारित्तेण सह अप्पसद्दहणं तिविहेण धरिदव्वं ति भावत्थो ॥16॥

उत्थानिका—पुणो वि सो साहू अप्पसद्दहणेण सह किं गिण्हदि त्ति आह–

बालग्गकोडिमित्तं परिगहगहणं ण होइ साहूणं।
भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णण्णं इक्कठाणम्मि ॥17॥

टीका—जो अप्पसरूवं सद्दहदि जाणादि झाणकाले अणुहवदि य सो भेदाभेदरयणत्तयपवट्टिदो **इक्कठाणम्मि** गिहत्थगिहे गदो उब्भकाउसग्गमुद्दाए **पाणिपत्ते दिण्णण्णं** गिहत्थेण जं दिण्णं तं तत्थ एव **भुंजेइ** ण अण्णठाणे गमिय भुंजेइ। जं भोयणं हत्थे अण्णपत्ते वा गिण्हइ अण्णट्ठाणे भुंजेइ

कार्य की उत्पत्ति नहीं होती है। शुद्धात्म स्वरूप का अनुभवन तो निश्चयचारित्र है उसको ही स्वरूपाचरणचारित्र अथवा यथाख्यातचारित्र कहा जाता है, उस चारित्र से ही मोक्ष होता है। गृहस्थों के गुप्ति, समिति, व्रत आदि रूप व्यवहारचारित्र का अभाव होने से निश्चयचारित्र की प्राप्ति नहीं होती है, इस कारण से व्यवहारचारित्र के साथ आत्मश्रद्धान मन, वचन, काय तीन प्रकार से धारण करना चाहिए, यह भावार्थ है ॥16॥

उत्थानिका—पुनः वह साधु आत्म श्रद्धान से क्या ग्रहण करता है ? इस प्रकार पूछने पर कहते हैं–

अन्वयार्थ— **(साहूणं)** साधुओं के **(बालग्गकोडिमित्तं)** बाल के अग्र भाग से करोड़ भाग मात्र **(परिगहगहणं)** परिग्रह ग्रहण **(ण होइ)** नहीं होता **(इक्कठाणम्मि)** एक स्थान में खड़े होकर **(दिण्णण्णं)** दिया हुआ अन्न **(पाणिपत्ते)** पाणिपात्र में **(भुंजेइ)** ग्रहण करते हैं।

टीकार्थ—जो आत्मस्वरूप का श्रद्धान करता है आत्म स्वरूप को जानता है और ध्यान काल में उसका अनुभवन करता है वह भेद-अभेद रत्नत्रय में प्रवर्तित हुआ एक स्थान पर ही गृहस्थ के घर में गया हुआ, खड़े होकर कायोत्सर्ग की मुद्रा से पाणिपात्र में गृहस्थ द्वारा दिए हुए जो अन्नादि उसको ही ग्रहण करता है, अन्य स्थान में जाकर के वह भोजन नहीं करता है। जो भोजन हाथ में अथवा अन्य पात्र में ग्रहण करके अन्य स्थान में भोजन करता है वह भोजन भी परिग्रह दोष से सहित होता है। कैसे हो जाता है? दिगम्बर श्रमणों को बाल के अग्रभाग की कोटि अर्थात् अनी मात्र

दाता-प्रदत्त कर में स्थित हो दिवा में, आहार ले, न बहु बार नहीं निशा में।
बालाग्र के अणु बराबर भी अपापी, साधू परिग्रह नहीं रखता कदापी॥17॥

तं भोयणं वि परिग्गहदोससहिदं होदि। कधं? **साहूणं** दियंबरसमणाणं **बालग्गकोडिमित्तं परिगहगहणं ण होइ** किं पुण पत्तभोयणपाणादिपदत्थेहिं ॥17॥

उत्थानिका—अह तमेवत्थं दिढं कीरदि–

जहजायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गिण्हदि हत्थेसु।
जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोदं ॥18॥

टीका—जहजायरूवसरिसो पसूदिउववण्णबालो जहजायो तस्स रूवमिव सरिसो णिव्वियारो सरीरसंकाररहिदो समणो **हत्थेसु तिलतुसमित्तं** सारभूदासारभूद **मप्प बहुअं** वा **ण गिण्हदि जइ** अप्पबहुयं **लेइ तत्तो** परिग्गहदोसेण **णिग्गोदं** णीचगदीसु **जाइ** गमणं होइ। उस्सग्गमग्गे दियंबररूवं धरिय सव्वपरिच्चागरूवापरिग्गहमहव्वदं गिण्हदि। अप्पमत्तो होदूण सुद्धप्पझाणसंलीणो सामाइयचारित्तेण सरूवे चरइ। अपवादमग्गे तस्सत्तीए अहावादो उवयरणमस्सिय वट्टइ। जिणमग्गे णाणसाहणट्ठं णाणोवयरणं सत्थं गिण्हदि। पवुत्तीए जीवहिंसादोसपरिहरणट्ठं संजमोवयरणं मयूरपिच्छिं

भी परिग्रह का ग्रहण नहीं होता है, फिर पात्र, भोजन, पानी आदि पदार्थों के साथ उसका परिग्रह क्यों नहीं होगा अर्थात् अवश्य ही होगा ॥17॥

उत्थानिका—अब उसी अर्थ को दृढ़ करते हैं–

अन्वयार्थ— **(जहजायरूवसरिसो)** यथाजात रूप सदृश–नग्नमुद्रा के धारक मुनि **(तिलतुसमित्तं)** तिलतुष मात्र भी परिग्रह **(हत्थेसु)** हाथों में **(ण गिहदि)** नहीं ग्रहण करते **(पुण)** और **(जइ)** यदि **(अप्पबहुयं)** थोड़ा बहुत **(लेइ)** ग्रहण करता है **(तत्तो)** तो **(णिग्गोदं)** निगोद **(जाइ)** जाता है।

टीकार्थ—प्रसूति के समय उत्पन्न हुए बालक के समान जिसका रूप है वह यथाजात जैसा रूप है, वह रूप निर्विकार है क्योंकि शरीर के संस्कार से रहित है, वह श्रमण अपने हाथों में तिलतुष मात्र भी सारभूत या असारभूत, अल्प अथवा बहुत ग्रहण नहीं करता है। यदि थोड़ा बहुत लेता है तो उससे परिग्रह के दोष से वह निगोद अर्थात् नीच गतियों में जाता है। उत्सर्ग मार्ग में दिगम्बररूप को धारण करके सर्व परिग्रह के परित्यागरूप अपरिग्रह महाव्रत को ग्रहण करता है। अप्रमत्त होकर के शुद्धात्मध्यान में लीन हुआ सामायिक चारित्र से स्वरूप में आचरण करता है। अपवाद मार्ग में उस उत्सर्ग मार्ग की शक्ति का अभाव हो जाने से उपकरणों का आश्रय लेकर के प्रवृत्ति करता है। जिनमार्ग में ज्ञान के साधन के लिए ज्ञानोपकरणरूप शास्त्र को ग्रहण करता है, प्रवृत्ति के समय पर जीवहिंसा दोष का परिहार करने के लिए संयम के उपकरण मयूर पिच्छिका को ग्रहण करता है। मलमूत्र आदि के परित्याग के समय पर जल से शुद्धि करने के लिए शौच उपकरण कमण्डलु को

है जातरूप शिशु सा मुनि धार भाता, अत्यल्प भी नहिं परिग्रह भार पाता।
लेता परिग्रह मनो बहु या जरा सा, क्यों ना करे फिर तुरन्त निगोदवासा ॥18॥

गिण्हदि। मलमुत्तादिपरिच्चागसमए जलसुद्धिकरणट्ठं सोचोवयरणं कमण्डलुं गिण्हदि। संजमपालणादि-छक्कारणेहिं भोजणं सुत्ताणुसारेण गिण्हदि। तदो तं पि ण परिग्गहदोसे। वुत्तं च–

अदेहणं भावणं चावि उग्गहं य परिग्गहे।
संतुट्ठो भत्तपाणेसु तदियं वदमस्सिदो॥

वत्थपत्तादिपसंगे परिग्गहदोसाणुसंगो तेसिं धोवणरक्खणविणासादिचिंताए अट्टरुद्दज्झाणप्पसंगादो ण अप्पणो गुणयरा। जेहिं णिग्गंथदियंबररूवस्सुवगारो हवे जेहिं अहिंसाआकिंचण-णिप्परिग्गहगुणाणं वुड्ढी हवे ताणि उवयरणाणि सेसा परिग्गहा। जे वत्थपत्तादियं परिमोत्तुं समत्था ण संति तेसिं उक्कट्ठसावयधम्मेण अणुवट्टावेयव्वं ति ॥18॥

उत्थानिका—अह परिग्गहगहणं जिणलिंगस्स विरुद्धमिदि वण्णेदि–

जस्स परिग्गहगहणं अप्पं बहुयं च हवइ लिंगस्स।
सो गरहिउ जिणवयणे परिगहरहिओ णिरायारो ॥19॥

ग्रहण करता है। संयम का पालन आदि छह कारणों के साथ ही भोजन करता है और उस भोजन को वह सूत्र के अनुसार ही ग्रहण करता है इसलिए वह भोजन भी उसके लिए परिग्रह का दोष नहीं होता है।

कहा भी है– "**अदेहणंभावणंचावि** जो देह से रहित भावना करता है परिग्रह में जिसका कोई संकल्प नहीं है और भक्तपान मात्र में संतुष्ट होता है वह तृतीय व्रत के आश्रित होता है।"

वस्त्र, पात्र आदि के प्रसंग आ जाने पर परिग्रह के दोष से सहित होता है। उस परिग्रह के धोवन, रखना और विनाश आदि न होवे इस प्रकार की चिंता से आर्त्त-रौद्र ध्यान का प्रसंग आता है जो कि आत्मा के लिए गुणकारी नहीं है। निर्ग्रंथ दिगम्बर रूप का उपकार जिन उपकरणों से हो, अहिंसा, आकिंचन्य और निष्परिग्रह गुणों की वृद्धि जिनके द्वारा हो वे ही उपकरण हैं, बाकी शेष परिग्रह हैं। जो वस्त्र, पात्र आदि छोड़ने के लिए समर्थ नहीं होते हैं उनके लिए उत्कृष्ट श्रावकधर्म से अनुवर्तन करना चाहिए, यह तात्पर्य है ॥18॥

उत्थानिका—अब परिग्रह का ग्रहण जिन लिंग के विरुद्ध है इस प्रकार का वर्णन करते हैं–

अन्वयार्थ—(**जस्स लिंगस्स**) जिस लिंगधारी के (**अप्पं बहुयं च**) थोड़ा बहुत भी (**परिग्गहगहणं**) परिग्रह ग्रहण (**हवइ**) होता है (**सो**) वह (**जिणवयणे**) जिनवचन में (**गरहिउ**) निंदनीय है (**च**) और (**परिगहरहिओ**) परिग्रह रहित लिंग (**णिरायारो**) निर्विकार है।

जो मानते यदि परिग्रह ग्राह्य साधू, वे वन्दनीय नहिं हैं कहलाय स्वादू।
होता घृणास्पद ससंग अगार होता, निस्संग ही जिन कहें अनगार होता ॥19॥

टीका—जस्स लिंगस्स उक्कट्ठलिंगरूवसमणस्स **अप्पं** थोवं **बहुयं** अहियं **च परिग्गहगहणं हवइ सो जिणवयणे** जिणिंददेसणाए **गरहिउ** णिंदणीओ णिकट्ठो वा होइ। जदो **परिग्गहरहिओ णिरायारो** उक्कट्ठसंजमाचरणचरिओ। तस्स कारणं वुच्चदे। जस्स अंतरप्पम्मि अणंताणुबंधि-अपच्चक्खाणावरण-पचक्खाणावरणकसायचउक्काणं अहावो हवे तस्स बाहिरे उवयरणगहणे पि मुच्छाए अहावो वि णियमेण हवे जादरूवधरस्स सपरिग्गहस्स य परोप्परं सहावट्ठाणविरोहादो। अप्पं बहुअं वा धणभूमिदाससुवण्णरजदाण्णपाणादियं जो गिण्हदि सो संजलणकसाएण ण संभवो होदि तेण अण्णकसायुदयादो भावलिंगस्स अहावो जायदे। भावलिंगस्साहावे सुद्धप्पज्झाणस्ससाणुववत्तीदो कधं चित्तस्स अप्पगुणेसु अवट्ठाणं हवे त्ति दोसो ॥19॥

उत्थानिका—अह कधंभूदो णिग्गंथरूवो वंदणिज्जो त्ति भणदि—

पंचमहव्वयजुत्तो तिहिं गुत्तिहिं जो स संजदो होई।
णिग्गंथमोक्खमग्गो सो होदि हु वंदणिज्जो य ॥20॥

टीका—जो पंचमहव्वयजुत्तो अहिंसादिपंचवदाणं सम्मद्दंसणेण सहिदं पालेदि सो संजलण-

---

टीकार्थ—जो उत्कृष्टलिंग रूप श्रमण का लिंग है वह अल्प अथवा अधिक परिग्रह को ग्रहण करता है तो वह श्रमण जिनभगवान् की देशना में जिनेन्द्र देशना में गर्हा को प्राप्त है, निन्दनीय है अर्थात् निकृष्ट होता है। चूँकि परिग्रह से रहित ही निराकार उत्कृष्ट संयमाचरण चारित्र होता है। उसका कारण कहते हैं। जिसकी अन्तरात्मा में अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण इन कषाय चतुष्कों का अभाव हुआ है उसके बाहर में उपकरण का ग्रहण करने में भी मूर्च्छा का अभाव भी नियम से होता है। जातरूप को धारण करने वाला और परिग्रह से सहित होना यह दोनों चीजें परस्पर में सहावस्थान विरोध को प्राप्त हैं। थोड़ा अथवा बहुत धन, भूमि, दास, चाँदी, सुवर्ण, अन्न पान आदि जो ग्रहण करता है वह संज्वलन कषाय से संभव नहीं है, इस कारण से अन्य कषाय का उदय होने से उसके भावलिंग का अभाव होता है। भावलिंग का अभाव होने पर शुद्धात्मध्यान की उत्पत्ति नहीं होती है, फिर उसके चित्त का आत्मा के गुणों में अवस्थान कैसे हो सकता है ? यह दोष उत्पन्न होता है ॥19॥

उत्थानिका—अब किस प्रकार का निर्ग्रंथरूप वंदनीय है यह कहते हैं—

अन्वयार्थ—(जो) जो **(पंचमहव्वयजुत्तो)** पाँच महाव्रतों से युक्त **(तिहिं गुत्तिहिं)** तीन गुप्तियों से सहित है **(स संजदो)** वह संयम से युक्त **(होई)** होता है **(सो)** वह **(हु)** निश्चय से **(णिग्गंथमोक्खमग्गो)** निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग में **(वंदणिज्जो)** वंदनीय **(होदि)** होता है।

टीकार्थ—जो पाँच महाव्रतों से युक्त हैं अर्थात् अहिंसा आदि 5 व्रतों को सम्यग्दर्शन के साथ

जो पाँच पाप तज पंच महाव्रती हैं, निर्ग्रन्थ मोक्ष-पथ पे चलते यती हैं।
निर्दोष पालन करें त्रय गुप्तियाँ हैं, वे वन्दनीय, कहती जिन-सूक्तियाँ है॥20॥

कसायचउक्कस्स तिव्वमंदोदयादो पमत्तापमत्तगुणट्ठाणेसु वट्टइ। **तिहिं गुत्तिहिं** मणवयणकाय-जोगाणं असुहपवुत्तिणिरोहेहिं असेसपवुत्तिणिरोहेहिं वा सह जो **स** सुहोवओगी **संजदो होई**। सो **णिग्गंथमोक्खमग्गो** अकहणेण वि वीयरागभगवंतपणीदमोक्खमग्गो एसो होदि त्ति उवदिसइ। **सो** य खलु **वंदणिज्जो** सिद्धादिभत्तिहिं णमोत्थुणिवेदणजोग्गो **हु होदि**। तिगुत्तिसंजुत्तो साहू असेसपवुत्ति- णिरोहेहि अभेदरयणत्तयपरिणदीए मुक्खधम्मज्झाणेण णाणसरूवाप्पाणं संवेदेदि तेण सुद्धोवजोगी अप्पणाणी वुच्चदे। तस्स य बहुयरकम्मणिज्जरणं होदि। तक्काले णिच्छयमोक्खमग्गो होदि। सेस काले ववहारमोक्खमग्गो असुहपवुत्तिणिरोहेहिं गोणधम्मज्झाणेण णाणसरूवाप्पाणं सद्दहदि जाणादि वा तेण वि तच्चणाणी वुच्चदे। तस्स य भेदरयणत्तयपरिणदीए असंखेज्जगुणसेढिणिज्जरणं सामण्णेण होदि। एवं भेदाभेदरयणत्तयपवुत्तीए णिग्गंथमोक्खमग्गो णिच्छयववहारसरूवो णायव्वो। वुत्तं च–

असुभोवयोगरहिदा सुद्धुवजुत्ता सुहोवजुत्ता वा।
णित्थारयंति लोगं तेसु पसत्थं लहदि भत्तो॥
(प्रवचनसार 3/60) ॥20॥

पालन करता है वह संज्वलन कषाय चतुष्क के तीव्र और मंद उदय होने से प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानों में प्रवर्तन करता है। तीनों गुप्तियों के द्वारा अर्थात् मन, वचन और काय योगों का अशुभ प्रवृत्ति में निरोध करने के द्वारा अथवा समस्त प्रकार की प्रवृत्तियों के निरोध के साथ जो वह शुभोपयोगी संयत होता है वह निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग को बिना कहे भी ''वीतराग भगवान् के द्वारा प्रणीत मोक्षमार्ग ऐसा है।''

इस प्रकार कथन के बिना भी उसका उपदेश देता है, वह ही वास्तव में वंदनीय है अर्थात् सिद्ध आदि भक्ति के द्वारा नमोऽस्तु निवेदन के योग्य होता है। तीन गुप्तियों से संयुक्त साधु समस्त प्रकार की प्रवृत्तियों के निरोध से अभेदरत्नत्रय की परिणति में मुख्य धर्मध्यान के द्वारा ज्ञानस्वरूप आत्मा का संवेदन करता है इस कारण से शुद्धोपयोगी आत्मज्ञानी कहा जाता है। उसके बहुतर कर्मों की निर्जरा होती है। उस अभेद रत्नत्रय की परिणति के काल में निश्चय मोक्षमार्ग होता है। अन्य काल में व्यवहार मोक्षमार्ग होता है। अशुभ प्रवृत्ति के निरोध हो जाने से गौण रूप धर्मध्यान के द्वारा ज्ञानस्वरूप आत्मा का वह श्रद्धान करता है अथवा वह जानता है, जिससे वह तत्त्वज्ञानी कहा जाता है। उसके लिए भेदरत्नत्रय की परिणति में भी असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा सामान्यरूप से होती है। इस प्रकार भेद-अभेद रत्नत्रय की प्रवृत्ति से निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग निश्चय और व्यवहार स्वरूप जानना चाहिए।

कहा भी है– ''अशुभोपयोग से रहित शुभोपयोगी अथवा शुद्धोपयोगी दोनों प्रकार के श्रमण होते हैं, जो लोक का निस्तार करते हैं उनकी भक्ति से प्रशस्तपने को प्राप्त होते हैं'' ॥20॥

उत्थानिका—अह पढमलिंगंभणिऊण अण्णदुविहलिंगस्स विसयवण्णणं कीरदि–

दुइयं च उत्तलिंगं उक्किट्ठं अवरसावयाणं च।
भिक्खं भमेइ पत्तो समिदीभासेण मोणेण ॥21॥

टीका—दुइयं च वुत्तलिंगं दुविहं जं दंसणपाहुडे जं लिंगं वुत्तं जहा–'एक्कं जिणस्स रूवं बीयं उक्किट्ठसावयाणं च। अवरट्ठियाण तइयं' ति गाहाणुसारेण एत्थ वि दुविहस्स विदियतदियलिंगस्स फुडीकरणं कदं। तत्थ **उक्किट्ठं** बीयं उक्किट्ठसावयाणं च तइयं अवरट्ठियाण **अवरसावयाणं च**। जदि 'दुइयं' ति सद्दस्स अत्थो द्वितीयं विदियं वा घेप्पदे तो पुव्वं दंसणपाहुडे उक्किट्ठसावयाणं बीयं ति भणिदं एत्थ पुण उक्किट्ठअवरसावयाणं च बीयं भणिदमिदि पुव्वावरविरोहस्स पसंगो होज्ज। गाहाए एसो अत्थो पुव्वं ण दिट्ठो तेण कधं सच्चं होज्ज? सच्चं वुत्तं; तहावि एसो मे अहिप्पाओ अत्थि, ण च एयंतग्गहो त्ति। 'अवरसावयाणं च' ति पाढस्स को अत्थोत्ति चिंतिदव्वो। तत्थ उक्कट्ठसावयो **भिक्खं भमेइ** भिक्खाचरियं अणेयगिहगमणेण एगगिहे वा। **पत्तो** धादुपत्तसहिदो।

उत्थानिका—अब प्रथम लिंग को कह करके अन्य दो प्रकार के लिंगों का वर्णन करते हैं–

अन्वयार्थ– **(दुइयं च उत्तलिंगं)** दूसरा उत्कृष्ट लिंग **(उक्किट्ठं च अवरसावयाणं)** उत्कृष्ट तथा अपर श्रावकों का है जो **(भिक्खं)** भिक्षा के लिये **(पत्तो)** पात्र लेकर **(समिदीभासेण)** भाषासमिति व **(मोणेण)** मौनपूर्वक **(भमेइ)** भ्रमण करता है।

टीकार्थ—जो दो प्रकार का लिंग दर्शनपाहुड में कहा गया है जैसे कि ''**एक्कं जिणस्स रूवं बीयं उक्किट्ठसावयाणं च अवरट्ठियाण तइयं** इस गाथा के अनुसार यहाँ पर भी दो प्रकार के अर्थात् द्वितीय और तृतीय लिंग का स्पष्टीकरण किया गया है। उसमें दूसरा लिंग उत्कृष्ट श्रावकों का लिंग है और तीसरा अन्य श्रावकों का लिंग है। यदि **दुइयं** इस शब्द का अर्थ दूसरा ग्रहण करते हैं तो पहले दर्शनपाहुड में ''उत्कृष्ट श्रावकों का दूसरा लिंग है।'' इस प्रकार कहा गया है और यहाँ पर पुनः उत्कृष्ट और अपर श्रावकों का दूसरा लिंग है इस प्रकार से कहा गया है तो इसमें पूर्वापर विरोध का प्रसंग हो जायेगा, इसलिए यहाँ **दुइयं** शब्द से दो प्रकार का लिंग ग्रहण करना चाहिए।

प्रश्न– गाथा का ऐसा अर्थ पहले कभी नहीं देखा गया इसलिए यह सत्य कैसे हो?

उत्तर– आपने सत्य कहा है। फिर भी मेरा यह अभिप्राय है, मेरा एकान्त आग्रह नहीं है। गाथा में आए 'अवरसावयाणं च' इस पद का क्या अर्थ है, सोचना चाहिए। उसमें उत्कृष्ट श्रावक भिक्षा से भ्रमण करता है। वह भिक्षाचर्या को अनेक घरों में गमन करके अथवा एक घर में गमन करके भी प्राप्त करता है। उसके पास में धातुपात्र होता है, वह पाँच समिति के पालने में तत्पर होता

जो भोजनार्थ भ्रमते मन मौन पालें, किंवा सुवाक् समिति से कर-पात्र धारें।
सिद्धान्त में कथित वो गृह-त्यागियों का, दूजा सुलिंग परमोत्तम श्रावकों का॥21॥

समिदी पंचसमिदिपालणपरो। **भासेण** 'भिक्षां देहि' त्ति उच्चारणेण **मोणेण** वा गमइ। अवरसावयाणं चरिया उद्दिट्ठचागाहावे सामण्णेण णादव्वा तेणेत्थ ण भणिया ॥21॥

उत्थानिका—अह को वि पुच्छदि–किं इत्थीणं लिंगं हवे ण वा, तस्स संदेहणिरायरणट्ठं गाहासुत्तं भणदि–

लिंगं इत्थीणं हवदि भुंजइ पिंडं सुएयकालम्मि।
अज्जिय वि एकवत्था वत्थावरणेण भुंजेइ ॥22॥

टीका—इत्थीणं लिंगं हवदि। णणु च–जदि इत्थीणं लिंगं हवदि तो चउत्थलिंगस्स पसंगो हवे। तण्ण संभवइ ''चउत्थं पुण लिंग दंसणे णत्थि'' त्ति पुव्वमेव दंसणपाहुडे भण्णमाणत्तादो पइण्णाभंगदोसादो वा। तण्ण दोसो; णिग्गंथमोक्खमग्गे कारणकज्जसंबंधाहावादो। तं जहा–जहा पढमं लिंगं जिणस्स रूवं तस्स कारणं विदियं लिंगं उक्किट्ठसावयाणं, तस्स वि कारणं तिदियं लिंगं अवरसावयाणं घडदे तहा ण इत्थीणं लिंगं होदि तेण मोक्खमग्गे मुक्खरूवेण तिविहाणि एव लिंगाणि। इत्थीणं लिंगं पुण उवयारेण होदि तेण तस्स वि समत्थणं **लिंगं इत्थीणं हवदि** त्ति

है और **भिक्षां देहि** इस प्रकार वचन के उच्चारण से अथवा मौन से भी वह गमन करता है, अपर श्रावकों की भी चर्या उद्दिष्ट त्याग का अभाव होने पर सामान्य से जानना चाहिए, इसलिए नहीं कही गई है ॥21॥

उत्थानिका—अब कोई भी पूछता है कि स्त्रियों का भी तो लिंग होता है अथवा नहीं होता है? उसके संदेह का निवारण करने के लिए गाथा सूत्र कहते हैं–

अन्वयार्थ— तृतीय **(लिंगं)** लिंग **(इत्थीणं)** स्त्रियों का **(हवदि)** होता है। [जो] **(सु एयकालम्मि)** एक बार **(पिंडं भुंजइ)** आहार ग्रहण करती हैं **(अज्जिय)** आर्यिका **(वि)** भी **(एकवत्था)** एक वस्त्र रखती है तथा **(वत्थावरणेण)** वस्त्र सहित ही **(भुंजेइ)** भोजन करती है।

टीकार्थ—स्त्रियों का लिंग होता है ? **प्रश्न**—यदि स्त्रियों का लिंग होता है तो चौथे लिंग का प्रसंग आ जाता है और वह चतुर्थ लिंग संभव नहीं है क्योंकि **चउत्थं पुण लिंग दंसणे णत्थि** इस प्रकार पहले ही दर्शनपाहुड में कहा गया है और फिर भी माना जाए तो प्रतिज्ञा का भंग होता है? **उत्तर**— यह कोई दोष नहीं है क्योंकि निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग में कारण–कार्य संबंध का अभाव हो जाता है। जो इस प्रकार है जैसे प्रथम लिंग–जिनेन्द्र भगवान् का रूप है, उसका कारण दूसरा लिंग–उत्कृष्ट श्रावक है, उसका भी कारण तीसरा लिंग–अपर श्रावकों का घटित हो जाता है, उसी प्रकार से स्त्रियों का लिंग घटित नहीं होता है, इसलिए मोक्षमार्ग में मुख्य रूप से तीन प्रकार के ही लिंग कहे गए हैं। स्त्रियों का लिंग पुनः उपचार से होता है, इसलिए उनका भी समर्थन **लिंगं इत्थीणं**

आहार बैठ, कर में इक बार पा ले, आर्या सवस्त्र वह भी इक वस्त्र धारे।
स्त्री का तृतीय वर लिंग यही कहाता, चौथा न लिंग मिलता जिन–शास्त्र गाता ॥22॥

वयणेण कदं अण्णहा सव्वपयारेणाहावप्पसंगादो। उवयारवयणविवक्खाए पुव्वावरदोसो पइण्णाभंगदोसो वि ण जायदे। इदं मे चिंतणं जदि पुव्वाइरियविरुद्धं हवे तो ण गेण्हिदव्वं। सा **अज्जिय वि सुएयकालम्मि** रविउदयत्थमणकाले तिघडियं कालं वज्जिय **पिंडं भुंजइ**। सा **एक्क वत्था** सव्वकाले चिट्ठदि। भोयणकाले वि **वत्थावरणेण भुंजेइ** ॥22॥

उत्थानिका—अह वत्थधराणं मुत्तिविसए पडिसेहो कीरदे–

णवि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ॥23॥

टीका—जिणसासणे जिणिंदसासणे वीयरायधम्मतित्थे। **वत्थधरो** धवलरत्तादिपडसहिदो कोवीणमेत्तजुत्तो वा **ण वि सिज्झइ** केवलणाणजोग्गसुक्कज्झाणाहावे ण सिद्धिं लहदि। **जइ वि तित्थयरो होइ** तित्थयरणामकम्मसंजुत्तो होदूण तब्भवे हि णियमेण मोक्खलाहो जस्स तस्स वि। **णग्गो** संकप्पपुव्वियं जम्मजरामिच्चुरोगविणासणट्ठं सव्वाभरणवत्थपरिग्गहसामित्तपरिमुत्तो।

हवदि अर्थात् स्त्रियों का लिंग होता है, इस प्रकार के वचन से किया गया है, अन्यथा सर्व प्रकार से स्त्रियों के लिंग के अभाव का प्रसंग आ जायेगा। उपचार वचन की विवक्षा में पूर्वापर दोष और प्रतिज्ञाभंग का दोष भी नहीं आता है। मेरा यह चिन्तन यदि पूर्वाचार्यों के विरुद्ध हो तो ग्रहण नहीं करना। वह आर्यिका भी सूर्य के उदय और अस्तकाल में तीन घड़ी समय को छोड़कर भोजन करती है, वह एक वस्त्र के साथ सर्वकाल रहती है, भोजन काल में भी वस्त्रावरण के साथ ही भोजन करती है ॥22॥

उत्थानिका—अब वस्त्र को धारण करने वालों का मुक्ति के विषय में प्रतिषेध किया जाता है–

अन्वयार्थ—(जिणसासणे) जिनशासन में कहा है कि **(वत्थधरो ण सिज्झइ)** वस्त्रधारी सिद्धि को प्राप्त नहीं होता। **(तित्थयरो जइ वि होइ)** वह तीर्थंकर भी क्यों न हो। **(णग्गो विमोक्खमग्गो)** नग्नभेष ही मोक्षमार्ग है **(सेसा सव्वे उम्मग्गया)** शेष सब उन्मार्ग हैं।

टीकार्थ—जिणसासणे अर्थात् जिनेन्द्र भगवान् के शासन में वीतराग धर्म में धवल, लाल आदि वस्त्रों से सहित अथवा कोपीन मात्र से युक्त भी सिद्धि को प्राप्त नहीं होता है, वह केवलज्ञान के योग्य शुक्लध्यान के अभाव होने से कभी भी सिद्धि को प्राप्त नहीं करता है यह तात्पर्य है, चाहे वह तीर्थंकर भी क्यों न हो। तीर्थंकर नामकर्म के संयुक्त हो करके भी उस भव में नियम से मोक्ष का लाभ जिनको होता है उनके लिए भी वस्त्र के साथ सिद्धि नहीं होती है। संकल्पपूर्वक जन्म, जरा, मृत्यु रोग का विनाश करने के लिए सभी प्रकार के आवरण, वस्त्र और परिग्रह के स्वामित्व से जो

सद्दृष्टि तीर्थंकर हो घर में भले ही, जो वस्त्र-धारक जिन्हें शिव ना मिले ही।
निर्ग्रन्थ मोक्ष-पथ ही अवशिष्ट सारे, संसार-पंथ तजते समदृष्टि वाले ॥23॥

विमोक्खमग्गो–वि–विसेसेण मोक्खमग्गो। तित्थयरो वि जदा वेरग्गभावणाए सव्वमादुपिदुगिह-बंधुजण- रागसंबंधं चइऊण वणे गंतूण सव्वसमक्खं केसलुंचणादिविहिणा बहिरब्भंतरसंगं चयदि तदा हि सो णिव्वाणजोग्गो होदि ण अण्णहा। **सेसा** सपरिग्गहेण मोक्खं मण्णंता **सव्वे उम्मग्गया** संसारभमणकारणभूदा त्ति ॥23॥

उत्थानिका—अह इत्थीणं पव्वज्जा किं ण हवे त्ति भणदि–

लिंगम्मि य इत्थीणं थणंतरे णाहिकक्खदेसेसु।
भणिओ सुहुमो काओ तासिं कह होइ पव्वज्जा ॥24॥

टीका—इत्थीणं लिंगम्मि य जोणिमज्झे। **थणंतरे** दोण्हं थणाणं मज्झभागे **णाहिकक्खदेसेसु** णाहिट्ठाणे। दोण्हं बाहूणं मज्झे कक्खदेसेसु। **सुहुमो काओ भणिओ** चक्खिंदियागोयरसुहुमकाय-जीवाण-मुववत्ती जिणिंदेहिं भणिदा। ते जीवा पंचिंदिया समुच्छिया लद्धिअपज्जत्ता मणुस्सा वि होंति। ओरालियसरीरे वि पुरिसदेहावेक्खाए इत्थिदेहे अहियजीवोवत्तितग्घाददंसणादो तद्देहमहव्वदपा-लणजोग्गो ण भवदि तेण **तासिं कह पव्वज्जा होइ** ॥24॥

मुक्त है वही नग्न है। वही विशेष रूप से मोक्ष का मार्ग है। तीर्थंकर भी जब वैराग्य भावना से सभी माता-पिता, गृह, बंधुजनों के राग संबंध को छोड़कर के वन में जा करके सभी के समक्ष केशलोंचन आदि विधि के द्वारा बाह्य और अभ्यंतर परिग्रह को छोड़ते हैं तभी वह निर्वाण के योग्य होते हैं अन्यथा नहीं होते हैं। शेष जो कोई भी परिग्रह के साथ मोक्ष को मानते हैं वे सभी उन्मार्गी हैं संसार भ्रमण के कारणभूत हैं ॥23॥

उत्थानिका—अब स्त्रियों की प्रव्रज्या क्यों नहीं होती है यह कहते हैं–

अन्वयार्थ— (य) और **(इत्थीणं)** स्त्रियों के **(लिंगम्मि)** योनि में **(थणंतरे)** स्तनों के मध्य में **(णाहिकक्खदेसेसु)** नाभि तथा कांख आदि स्थानों में **(सुहुमो काओ)** सूक्ष्मकाय जीव **(भणिओ)** कहे गए हैं **(तासिं)** उनमें **(पव्वज्जा)** प्रव्रज्या अर्थात् महाव्रत रूप दीक्षा **(कह)** कैसे **(होइ)** होती है।

टीकार्थ—स्त्रियों के लिंग में अर्थात् योनि के मध्य में, दोनों स्तनों के मध्य भाग में, नाभि, कांख स्थानों पर (दोनों बाहुओं के मध्य का स्थान कांख स्थान कहलाता है) उनमें सूक्ष्म काय वाले जीव कहे गए हैं। चक्षुइन्द्रिय के अगोचर सूक्ष्म काय जीवों की उत्पत्ति जिनेन्द्र भगवान् ने कही है। वे जीव पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छन लब्धिअपर्याप्तक मनुष्य भी होते हैं। औदारिकशरीर में भी पुरुषदेह की अपेक्षा स्त्री के देह में अधिक जीवों की उत्पत्ति और उन जीवों का घात देखा जाता है इसलिए स्त्री की देह महाव्रत के पालन के योग्य नहीं होती है, इस कारण से उनकी प्रव्रज्या कैसे हो सकती है ? अर्थात् नहीं हो सकती है ॥24॥

हों बाहु मूल तल में स्तननाभि में भी, हों सूक्ष्म जीव महिला-जन-योनि में भी।
वे सर्व वस्त्र तज दीक्षित होय कैसी, आर्या सवस्त्र रहती, रहती-हितैषी ॥24॥

उत्थानिका—पुणो वि तमेवत्थं कहेदि—

जइ दंसणेण सुद्धा उत्ता मग्गेण सा वि संजुत्ता।
घोरं चरिय चरित्तं इत्थीसु ण पव्वया भणिया ॥25॥

टीका—जइ दंसणेण सुद्धा उत्ता जिणसासणे इत्थीसु सम्मदंसणेण अप्पसुद्धी वुत्ता। दंसणमोहादिसत्तपयडीणमुवसमेण खओवसमेण वा सम्मत्तुववत्तीए अप्पविसोही होदि। सम्मद्दंसणेण सह सम्मणाणपरिणदी वि जादा। **सा मग्गेण वि संजुत्ता** अपच्चक्खाणावरणकसायचउक्कसण्णिद-चरित्तमोहकम्मोदयाभावे पंचमगुणट्ठाणजोग्गखओवसमचारित्तेण संजुत्ता होदि। अहवा सा मग्गे ण वि संजुत्ता णिच्छयमोक्ख-मग्गसरूवणिच्छयरयणत्तयपरिणदीए अहावादो।

ताओ **घोरं चरित्तं** एगावलिचारित्तसुद्धिकवलचंदायणादितवविसेसेण **चरिय** सग्गं गच्छंति पुणो अण्णभवे पुरिसपज्जाअं पप्पा मोक्खं लभंते। तेण संपहि **इत्थीसु** दव्वलिंगेण इत्थिपज्जाएसु **पव्वया** दिक्खा णिव्वाणजोग्गा दियंबररूवा **ण भणिया** ॥25॥

उत्थानिका—अब उसी अर्थ को पुनः कहते हैं—

अन्वयार्थ—(**जइ**) यदि स्त्री (**दंसणेण सुद्धा**) सम्यग्दर्शन से शुद्ध है (**सा**) वह (**वि**) भी (**मग्गेण**) मोक्षमार्ग से (**संजुत्ता**) संयुक्त (**उत्ता**) कही गयी है परन्तु (**घोरं**) घोर (**चरिय**) चारित्र के (**चरित्तं**) आचरण करने पर भी (**इत्थीसु**) स्त्रियों को (**पव्वया**) प्रव्रज्या (जिनदीक्षा) (**ण**) नहीं (**भणिया**) कही गयी है।

टीकार्थ—यदि वह दर्शन से शुद्ध कही गई है अर्थात् जिन शासन में स्त्रियों को सम्यग्दर्शन के साथ आत्मशुद्धि कही है। दर्शनमोह आदि सात प्रकृतियों के उपशमन अथवा क्षयोपशम से सम्यक्त्व की उत्पत्ति होने से आत्म विशुद्धि होती है। सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान की परिणति भी हो जाती है। वह स्त्री मार्ग से भी संयुक्त है अर्थात् अप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कसंज्ञा वाले चारित्र मोहनीय कर्म के उदय का अभाव होने पर पंचम गुणस्थान के योग्य क्षयोपशमिक चारित्र से वह संयुक्त होती है। अथवा "वह मार्ग में संयुक्त नहीं भी होती है" यह अर्थ भी जानना चाहिए क्योंकि निश्चय मोक्षमार्ग रूप निश्चय रत्नत्रय की परिणति का उनमें अभाव होता है। वे घोरचारित्र का आचरण करती हैं अर्थात् एकावली, चारित्रशुद्धि, कवलचंद्रायण आदि तप विशेष के साथ आचरण करती हैं। वह स्वर्ग में जाती है पुनः अन्यभव में पुरुषपर्याय को प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त करती हैं, इसलिए वर्तमान में स्त्रियों में द्रव्यलिंग से स्त्री पर्याय से निर्वाण के योग्य दिगम्बररूप दीक्षा नहीं कही गई है ॥25॥

सम्यक्त्व मंडित सही शुचि दर्पणा है, स्त्री योग्य संयम लिए तज दर्पणा है।
घोरातिघोर यदि चारित पालती है, तो आर्यिका तब न पापवती, सती है॥25॥

उत्थानिका—पुणो वि इत्थिसहावं वण्णेदि–

चित्तासोहि ण तेसिं ढिल्लं भावं तहा सहावेण।
विज्जदि मासा तेसिं इत्थीसु ण संकया झाणं ॥26॥

टीका—तेसिं चित्तासोहि ण इत्थिपज्जयवसादो तेसिं चित्ते अट्टरुद्दज्झाणकामहासवयणालावेण सोही ण चिट्ठदि। **तहा** तहेव **सहावेण** अंतरंगे इत्थिवेदणोकसयोदीरणावसेण **ढिल्लं भावं** परिणामाणं सेथिल्लं लज्जाभयभीरुत्त सहावो विज्जदि। **तेसिं मासा** मासे मासे रत्तसावो **विज्जदि**। तेण **इत्थीसु ण असंकया** णिब्भयेण दिढभावेण **झाणं** धम्मझाणं णिव्वियप्पणियप्पझाणं होदि ॥26॥

उत्थानिका—अह समणस्स सव्वदुक्खाइं कधं णियत्ताइं त्ति सहेउयं वण्णेदि–

गाहेण अप्पगाहा समुद्दसलिले सचेलअत्थेण।
इच्छा जाहुँ णियत्ता ताहुँ णियत्ताइं सव्वदुक्खाइं ॥27॥

उत्थानिका—पुनः स्त्रियों के स्वभाव का वर्णन करते हैं–

अन्वयार्थ—(तेसिं) उन स्त्रियों में **(ण चित्तासोहि)** चित्त शुद्धि नहीं होती **(तहा)** तथा **(सहावेण)** स्वाभाव से **(ढिल्लं भावं)** शिथिल भाव होता है **(तेसिं)** उनमें **(मासा)** मासिक धर्म **(विज्जदि)** विद्यमान होता है **(इत्थीसु)** स्त्रियों में **(संकया)** शंकाशील होने से **(ण झाणं)** ध्यान नहीं होता।

टीकार्थ—उनके चित्त में शुद्धि नहीं होती है। स्त्रीपर्याय के कारण से उनके चित्त में आर्त्त, रौद्र ध्यान, काम, हास्य वचनों के आलाप के साथ विशुद्धि नहीं ठहरती है। उसी प्रकार से स्वभाव से ही अंतरंग में स्त्रीवेद, नोकषाय की उदीरणा के कारण ढीलाभाव रहता है। परिणामों का ढीलापन अर्थात् शैथिल्य रहता है क्योंकि लज्जा, भय, भीरुता उनमें स्वभाव से ही विद्यमान रहती है। उनके मास-मास में रक्तस्राव भी होता है इस कारण से स्त्रियों में निःशंकता के साथ या निर्भयता के साथ दृढ़भाव से धर्मध्यान नहीं होता है। निर्विकल्पनिजआत्मा का ध्यान भी नहीं होता है ॥26॥

उत्थानिका—अब श्रमण के लिए सभी दुःखों की निवृत्ति कैसे होती है ? इसका सहेतुक वर्णन करते हैं–

अन्वयार्थ— (सचेलअत्थेण) वस्त्र सहित धोने के लिए **(अप्पगाहा)** थोडा सा

जो मास-मास प्रति मासिक दोष ढोती, शंका बनी हि रहती मन तोष खोती।
होती निसर्ग शिथिला मति से मलीना, होती स्त्रियाँ सब अतः निज ध्यानहीना ॥26॥
अन्नादि खूब मिलते पर अल्प पायें, इच्छा मिटी कि मुनि के दुख भाग जाये।
होता अपार जल यद्यपि है नदी पे, धोने स्ववस्त्र जल अल्प गहे सुधी पै ॥27॥

टीका–जाहुँ इच्छा लोहकसायोदएण जणिदकंखापरिणामो **णियत्ता ताहुँ सव्वदुक्खाइं** मोहजणिदिच्छापरिणामाइं **णियत्ताइं** दुक्खस्स कारणभूदमूलकारणस्साहावादो तक्कज्जस्स वि अहावो जायदि तिणतेलादिकारणाहावे जहा अग्गिसिहाहावो। जदि दियंबरसाहुम्मि इच्छा अत्थि तो सरीरेण रयणत्तयधम्मपालणस्सेव। तदट्ठं सो साहू जं आहारपाणादियं गिहत्थादो गिण्हदि तं वि अप्पं। तं सरीरं वि सगस्सिएण तवकम्मे पउंजदि तेण सव्वसुही जिणसाहू एव। वुत्तं च–

परायत्तात्सुखादद्दुःखं स्वायत्तं केवलं वरम्।
अन्यथा सुखिनामानः कथमासंस्तपस्विनः॥

(आत्मानुशासन 66)

एवमत्थं दिट्ठंतेण कहेदि–**समुद्दसलिले** अपारावारे अपारजलरासिगदे **सचेलअत्थेण** वत्थधोवणट्ठं जाव जलसमूहमिच्छदि ताव गिण्हज्जिदि तहेव **गाहेण** सावयगिहे अणेयविंजणपाणादिसमूहे गहणजोग्गे वि **अप्पगाहा** अप्पं गिण्हजोग्गा जेण क्षुहातिसाबाहाए णिवत्ती

(समुद्दसलिले) समुद्र का जल **(गाहेण)** ग्रहण करने से **(इच्छा)** इच्छा **(णियत्ता)** निवृत्त **(जाहु)** हो गई **(ताहु)** उनके **(सव्वदुक्खाइं)** सभी दुःख **(णियत्ताइं)** निवृत्त हो गए।

टीकार्थ–जिसके लोभ कषाय के उदय से उत्पन्न हुई आकांक्षा का परिणाम रुक गया है उसके सभी दुःख अर्थात् मोह जनित इच्छा परिणाम रुक गए हैं क्योंकि दुःख का कारणभूत मूलकारण का अभाव हो गया है। मूलकारण के अभाव हो जाने से उसके कार्य का भी अभाव हो जाता है। जिस प्रकार से तृण-तेल आदि कारणों का अभाव होने पर अग्नि की ज्वाला का अभाव हो जाता है। यदि दिगम्बर साधु में इच्छा है तो शरीर से रत्नत्रयधर्म का पालन करने के लिए ही है, उसके लिए ही वह साधु जो आहार-पानी आदि गृहस्थ से ग्रहण करता है वह भी अल्प ही ग्रहण करता है। उसका शरीर भी अपने आश्रित होने से तपः कर्म में युक्त होता है, इस कारण से जिनसाधु सर्वसुखी होता है।

कहा भी है–''पराधीनता से प्राप्त हुए सुख से तो स्वाधीनता के साथ प्राप्त हुआ दुःख भी श्रेष्ठ है अगर ऐसा न हो तो उन तपस्वियों का 'सुखी' नाम यह अन्यथा किस प्रकार हो सकता है।''

इसी अर्थ को दृष्टान्त के साथ कहते हैं–समुद्र के जल में जिसमें की अपार जलराशि रहती है उसमें अपने वस्त्र के लिए अर्थात् वस्त्र धोने के लिए जितना जल समूह चाहिए उतना ही ग्रहण किया जाता है, इसी प्रकार से श्रावक के घर में अनेक व्यंजन पान आदि के समूह होने पर ही ग्रहण योग्य का ही ग्रहण होता है और वह ग्रहण योग्य भी अल्प होता है जिससे कि क्षुधा-तृषा आदि की बाधा दूर हो जावे क्योंकि प्रमाण धूम और अंगार इन दोषों को छोड़ करके उस श्रमण के लिए

होज्ज पमाणधूमंगारदोसे छंडिऊण आहारगहणसंकप्पादो। एवं सुत्तपाहुडस्स सारो इच्छाणिरोहेण सुहस्स पत्तीए उवाओ त्ति पाहुढभावत्थो ॥27॥

इदि सुत्तपाहुडस्स णंदिणीटीका मज्झप्पदेसपंतस्स मंदसोरजणवदे वीरणिव्वाणद्दे पच्चीससदेगतीलीसतमे अट्ठारसमे वरिसाजोगे भाद्दपदकिण्हबारसमे बुधवासरे 09.09.2015 आइरियविज्जासायरसिस्सेण मुणि पणम्मसायरेण पुण्णा कदा।

आहार ग्रहण करने का संकल्प होता है, इस प्रकार सूत्रपाहुड का सार यह है कि ''इच्छा के निरोध से'' सुख की प्राप्ति का उपाय होता है, यही इस पाहुड का भावार्थ है ॥27॥

इस प्रकार सूत्रपाहुड की नंदिनीटीका मध्यप्रदेश प्रांत के मंदसौर जनपद में वीर निर्वाण संवत् 2541 में अठारहवें वर्षायोग में भाद्रपद कृष्णा द्वादशी को बुधवार 09.09.2015 को आचार्य विद्यासागर जी के शिष्य मुनि प्रणम्यसागर के द्वारा पूर्ण हुई।

''इति सूत्रपाहुड''

परिशिष्ट-1

सूत्रपाहुड़-संज्ञा शब्दकोश

सर्वनाम

जे = जो
तेण = वह (त)
तेहिं = उनके द्वारा
एदेण = इसके द्वारा
किं = क्या
किमट्ठं = किसलिए
को = कौन

जं = जिसको
तत् = उस
सो = वह
तम् = उसको
अहं = मैं
कश्चित् = किसी
ये = वे

तेणेव = इसलिए ही
उत्त = कहा गया
तह = फिर
वि = भी
पुणो = पुनः
स = वह

विशेषण

सुहुम = सूक्ष्म
चउव्विह = चार प्रकार
अइ = अति

क्रिया

मग्ग = अन्वेण करना, खोजना
साह = साधना
भास = कहना
होति = होते हैं
होदि = होता है
गुम्फ = गुंधना
वुच्च = कहना
कुण = करना
वस = रहना
आराहंति = आराधना करना
गवेसण = गवेषणा करना
पस्स = देखना
भण = कहना
वट्ट = वर्तन करना
णास = नष्ट होना
कंख = इच्छा करना

रोच = रुचि रखना
वण्ण = वर्णन करना
होइ = होता है
वह = प्राप्त करना
कह = कहना
जाण = जानना
खव = नाश करना
जाय = उत्पन्न ेरना
वम = वमन करना
चिट्ठ = रुकना
रमण = रमण करना
विहरदि = विहार करता है
सेवण = सेवन करना
कदि = खरीदना
सय = शयन करना
परिहर = दूर करना

कुण = करना
वुत्त = कहना
सह = सहन करना
झाय = ध्यान करना
इह = चाहना (इच्छा करना)
छंड = छोड़ना
ठिअ = स्थित
गच्छ = जाना
भण = कहना
हवे = हो
भुंज = भोजन करना
सय = सोना
चत्ता = छोड़ना
वस = रहना
पास = देखना
वक्क = बोलना

तप्प = तप करना
पुच्छ = पूछना
धार = धारण करना
णिच्छ = चाहना
कर = करना
पउंज = जोड़ना
लह = प्राप्त करना
दिण्ण = दिया गया
लेइ = लेता
चर = आचरण करना
वट्टइ = प्रवृत्ति करना
हवइ = होता है
भत्तो = प्राप्त होना
भुंज = भोजन करना
सिज्झ = सिद्धि प्राप्त करना

अव्यय

अत्थ = यहाँ
सम्मं = भली प्रकार
एत्थ = यहाँ
खलु = निश्चयपूर्वक
परि = चारों ओर (उपसर्ग)
सइ = साथ
विणा = बिना
सव्व = सभी
एवंविह = इस प्रकार
अहवा = अथवा
सह = साथ
अह = अब
विह = प्रकार
जहा = जैसे
तहा = उसी प्रकार
तमेव = उसी
वि = भी
हु = निश्चय से
वा = अथवा
पुणो = फिर
तह = उसी प्रकार
य = और
सह = साथ
जदा = जब
सयं = स्वयं
एव = ही
ण = नहीं
हु = निश्चय से
वि = ही
कह = कैसे
जइ = यदि
पच्छा = बाद में
अहवा = अथवा
अह = अथवा
पुणो = पुन:
पडि = प्रति
जदो = चूंकि
अदो = अत:
हु = निश्चय

कृदन्त

भासियं = भूतकालिक भाववाच्य = (प्रतिपादित किया गया)
गांथियं = भूतकालिक - भाववाच्य = (गूंथा गया)
भणियं = भूतकालिक - भाववाच्य = (कहा गया)
विणिग्गयं = भूतकालिक - विर्निगत
कदो = भूतकालिक (कर्तृ) किया गया
कहियं = भूतकालिक - भाववाच्य = कहा गया
धरेदूण = सम्बन्धक भूत-धारण करके
णाऊण = सम्बन्धक भूत-जानकर
जणिद = भूतकालिक-भाववाच्य-उत्पन्न हुए
दस्समाण = वर्तमान कृदन्त-दिखता हुआ
कादव्वी = विधि कृदन्त-करना चाहिए
पेक्खिऊण = सम्बन्ध भूत-देखकर
जाणिऊण = सम्बन्धक भूत-जानकर
जाणिय = भूतकालिक कृर्तवाच्या जाना
जुंजमाण = वर्तमान कृदन्त-जोड़ता हुआ
णादव्व = विधि कृदन्त जानना-चाहिए
विहिद = भूतकालिक-कहा गया
मुणेयव्व = जानना चाहिए
कुव्वंत = वर्तमान कृदन्त करता हुआ
कायव्व = विधि कृदन्त करना चाहिए
मोत्तूण = सम्बन्धक भूत छोड़कर
गद = भूतकालिक- गाथा
दादव्वं = विधि कृदन्त देना चाहिए
सेवमाण = वर्तमान कृदन्त-सेवन करता हुआ
मण्णमाण = वर्तमान कृदन्त-मानता हुआ
भुंजिय = भूतकालिक-कर्तृवाच्य = भोग कर
जाणिज्जइ = वर्तमान कृदन्त-कर्मवाच्य = जानना चाहिए

णादव्वं = विधि कृदन्त जानना चाहिए
धरिपव्वं = धारण करना चाहिए (विधि कृदन्त)
होदूण = सम्बन्धक कुदन्त होकर
परिमोत्तुं = छोड़ने के लिए
अणुवट्ट्टठावेयव्वं = विधि कृदन्त अनुवर्तन करना चाहिए
णायव्वो = जानना चाहिए
विधि कृदन्त
होदूण = सम्बन्धक भूत होकर
चइऊण = सम्बन्धक भूत छोड़कर
गंतूण = सम्बन्धक भूत जाकर

संख्यावाची

पढमं = पहला (प्रथम)
सत्तसय = सात सौ
सत्त = सात
सय = सौ
अट्ठारस = अठारह
विदियं = दूसरा
चउ = चार
छ = छह
दु = दो
ति = तीन
बावीस = बाइस
सए = सैंकड़ों
इक्क = एक
सत्त = सात
कोड़ी = करोड़
एय = एक
दो = दो
तिय = तीन
एयारस = ग्यारह
सोलस = सोलह
दुविह = दो प्रकार
तिहिं = तीन
पढम = प्रथम
दुइयं = दूसरा
वीयं = दूसरा
चउत्थ = चौथा

सूत्रपाहुड़

गाथा-1
अरहंत = अरंहत भगवान्
अत्थ = अर्थ
गणहर = गणधर
सवणा = सम्य्ऽदृष्टि दिगम्बर
देव = देव
परमत्थ = परमार्थ
सुत्त = सूत्र
गाथा-2
सुद्दिट्ठं = निर्दिष्ट
भव्व = भव्य
आयरिय = आचार्य
सिवमग्ग = मोक्षमार्ग
मेग्ग = मार्ग
गाथा-3
पवट्टण = प्रवर्तन
सूई = सुई
जाणमाण = जानने वाले
असुत्ता = सूत्र रहित
भव = भव
सुत्तेण = सूत्र सहित
भवणासण = भवनाश
गाथा-4
पुरिस = पुरुष
पच्चक्ख = प्रत्यक्ष
गओ वि = जाना हुआ भी
अदिस्समाण = अदृश्यमान
संसार = संसार
सच्चेयण = स्वात्म (स्वसंवेदन)
गाथा=5
सुत्त = सूत्र
बहुविहं = बहुत प्रकार
अत्थं = अर्थ
अत्थं = पदार्थ
जिण = जिनेन्द्र भगवान
हेयाहेयं = हेय और उपादेय
जीवाजीवादि = जीवाजीवादि
सदिट्ठि = सम्यग्दृष्टि
गाथा-6
जं = जो
परमत्थ = परमार्थ
जिणउत्तं = जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहा गया
ववहार = व्यवहार
जोई = योगी
तह = उसी प्रकार
मलपुंज = पाप पुंज
गाथा-7
पय = पद
विणट्ठ = विनष्ट करना
मिच्छादिट्ठी = मिथ्यादृष्टि
खेडेवि = खेल में भी
पाणिप्पत्तं = पाणिपात्र
सचेल = वस्त्र सहित
गाथा-8
हरिहर = विष्णु, रुद्र
संसारत्थ = संसारी
सग्ग = स्वर्ग
तुल्ल = तुल्य
भव = संसार

सिद्धि = सिद्धि
गाथा-9
सीह = सिह
सच्छंदं = स्वच्छन्द
चरिय = चर्चा
पाव = पाप
परियम्म = परिकर्म
गरुय = भारी
भारो = भार
गाथा-10
णिच्चेल = निर्ग्रन्थ
मोक्खमग्ग = मोक्षमार्ग
उवइट्ठ = उपदेश
परमजिणवर = परम जिनवर
सेस = शेष
अमग्ग = अमार्ग
गाथा-11
सजंम = संयम
वंदणीअ = वंदनीय
सहिअ = सहित
सुरासुर = सुर-असुर
आरंभ = आरम्भ
लोए = लोक
परिग्गह = परिग्रह
विरअ = विरत
गाथा-12
सत्ती = शक्ति
कम्मक्खय = कर्मक्षय
णिज्जरा = निर्जरा
साहू = साधु
गाथा-13
इच्छणिज्जा = इच्छाकार के योग्य
अवसेसा = सिवाय
लिंगी = लिंगी
संजुत्त = संयुक्त
चेलेण = वस्त्र
गाथा-14
ठाण = स्थान
सम्मत्त = सम्यक्त्व
परलोय = परलोक
सुहंकर = सुखी होना
गाथा-15
अह = अथवा
णिरवसेस = सम्पूर्ण शेष
अप्पा = आत्मा
संसारत्थ = संसारी
गाथा-16
एएण = इस
लह = प्राप्त करना
तिविह = तीन प्रकार
पयत्तेण = प्रयत्नपूर्वक
जाणिज्जइ = जानना चाहिए
गाथा-17
बालग्ग = बाल के अग्र भाग
दिण्णण्णं = दिया गया अन्न
कोडिमित्तं = कोटिमात्र
इक्क = एक
पाण = पानी
ठाण = स्थान
पत्त = पात्र
गाथा-18
अप्पबहुयं = थोड़ा बहुत
जहजाय = यथाजात
णिग्गोद = निगोद
तिलतुसमित्त = तिलतुजमात्र
जइ = यदि
गाथा-19
लिंग = लिंगधारी
गरहिउ = निदंनीय
निरायारो = निर्विकार
गाथा-20
पंचमहव्वय = पंचमहाव्रत
संजद = संयम
वंदणिज्ज = वंदनीय
गाथा-21
उत्तलिंगं = उत्कृष्ट लिंग
पत्ता = पात्र
उक्किट्ठ = उत्कृष्ट
समिदीभासा = भाषासमिति
अवर = अन्य
मोण = मौन
भिक्खं = भिक्षा के लिए
भम = भ्रमण करना
गाथा-22
लिंग = लिंग
काल = बार
इत्थी = स्त्री
अज्जिय = आर्यिका
पिडं = आहार
एकवत्था = एकवस्त्र
एय = एक
वत्थावरण = वस्त्रावरण
गाथा-23
जिणसासण = जिनशासन
सेसा = शेष
तित्थयर = तीर्थंकर
सव्व = सब
णग्ग = नग्नवेष
उम्मगया = उमार्ग (उन्मार्ग)
मोक्खमग्ग = मोक्षमार्ग
गाथा-24
लिंग = योनि
देस = स्थान
थण = स्तन
सुहुमकाओ = सूक्ष्मकाय
णाहि = नाभि
पवज्जा = प्रव्रज्या
कक्ख = कांख
गाथा-25
घोर = घोर
चरिय = चारित्र
चरित्त = आचरण करना
पव्वया = प्रवज्या

गाथा-26
चित्तासोहि = चित्तशुद्धि
संकया = शंकाशील
ढिल्लंभावं = ढीलाभाव
विज्ज = विद्यमान
मासा = मासिक धर्म

गाथा-27
णियत्ता = निवृत्ति
सलिल = जल
ताहु = उनके
सचेलअत्थेण = वस्त्र सहित धोने के लिए

सव्वदुक्ख = सभी दुःख
अप्पगाहा = थोड़ा सा
इच्छा = इच्छा
समुद्द = समुद्र
जाहु = हो गई

टीका

टीका गाथा-1
गाहा = गाथा
तिसा = तृषा (प्यास)
माणासिय = मानसिक
अरूवि = अरूपी
परमाणु = परमाणु
पव्वय = पर्वत
राम = राम
सव्वण्हु = सर्वज्ञ
महाभासा = माहभाषा
सद्द = शब्द
तालु = तालु
हिदमिद = हित-भित
गोदम = गौतम
पडिसेह = प्रतिषेध
राग = राग भाव
दोस = दोष
चेयण = चैतन्य
सुहुम = सूक्ष्म
आदि = आदि
रावण = रावण
दिव्व = दिव्य
अक्खर = अक्षर
कलाव = कलाप
सास = श्वास
पिय = प्रिय
कपिल = कपिल
लक्खण = लक्षण
रोग = व्याधि (बीमारी)

मुत्त = मुक्त
रूवि = रूपी
ट्ठाण = स्थान
खेत्त = क्षेत्र
काल = समय
झुणी = ध्वनि
अणक्खर = अनक्षर
एक्कपद = एकसाथ
णिप्फंदण = निष्पंदन
भासण = भाषण
कणाद = कणाद
क्षुहा = क्षुधा (भूख)
सारीरिय = शारीरिक
वीयराय = वीतराग
पोग्गल = पुद्गल
सुमेरु = सुमेरु
वेत्ता = जानने वाले
लघुमासा = लघुमासा
ओट्ठ = ओष्ठ
मुहकमल = मुखकमल
हिदोवदेसि = हितोपदेशी
छदुमत्थ = छद्मस्थ
बुद्धि = बुद्धि
तच्चत्थ = तत्त्वार्थ
पच्छद्ध = पश्चातार्ध
समं = श्रम
सील = स्वभाव
मग्ग = मार्ग
सार = सारभूत

इड्ढि = ऋद्धि
रयण = रचना
मण = मन
परूविद = प्ररूपित
ववहार = व्यवहार
णिस्सेयस = निःश्रेयस
ससमय = स्वसमय
बल = बल
वुत्त = कहा है
अप्प = आत्मा
अत्थ = अर्थ
णिच्छय = निश्चय
सुह = सुख
सिवमग्ग = शिवमार्ग
अणुओग = अनुयोग
पओजण = प्रयोजन
सहाव = स्वभाव
सवण = सुनना
मोक्ख = मोक्ष
सुत्तगद = सूत्रगत

टीका गाथा-2
वत्थु = वस्तु
परमप्प = परमात्मा
पमाणिय = प्रामाणिक
धरसेण = धरसेन
पुप्फदंत = पुष्पदंत
कुंदकुंददेव = कुन्दकुन्ददेव
पंचत्थिकाय = पंचास्तिकाय
भत्तिपाठ = भक्तिपाठ

मूलाचारसुत्त = मूलाचार सूत्र
तच्चवत्थसुत्तं = तत्वार्थसूत्र
कत्तिकेयाणुवेक्खा = कार्तिकेयानुप्रेक्षा
जुत्तियणुसासण = युक्त्यनुशासन
समाहितंत = समाधितंत्र
दसभत्तिपाठ = दशभक्तिपाठ
जोइंद = योगीन्द्रदेव
तच्चत्थवत्तिय = तत्वार्थराजवार्तिक
लघीयत्तय = लघीयस्त्रय
धवल = धवलाटीका
पासब्भुदअ = पार्श्वाभ्युदय
विज्जाणंद = विद्यानन्द
सच्चसासणपरिक्खा = सत्यशासनपरीक्षा
पासणाहथोत्त = पार्श्वनाथस्तोत्र
सरूव = स्वरूप
रयिद = रचित
उवलद्ध = उपलब्ध
पदत्त = प्रदत्त
भूदबलि = भूतबली
विरइय = विरचित
णियमसार = नियमसार
जइवसह = यतिवृषभ
गिद्धपिच्छ = गृद्धपिच्छ
सिवज्ज = शिवार्य
इट्ठोवदेस = इष्टोपदेश
गंथसुदं = ग्रंथसूत्र
परमप्पपयास = परमात्म प्रकाश
सिद्धिविणिच्छय = सिद्धिविनिश्चय
पमाणसंगहसवुत्ति = प्रमाणसंग्रहसवृत्ति
जयधवल = जयधवला
गुणभद्ध = गुणभद्र
अत्तपरिक्खा = आप्तपरीक्षा
दव्व = द्रव्य
वयण = वचन
वट्टमाण = वर्तमान
णाण = ज्ञान
भडारय = भट्टारक

समयपाहुड = समयप्राभृत
अट्ठपाहुड़ = अष्टपाहुड़
तिलोयपण्णत्ति = त्रिलोक प्रज्ञप्ति
अवरणाम = अपरनाम
भगवदीआराहणा = भगवतीआराधना
समंतभद्ध = समन्तभद्र
रयणकरंडसावयाचार = रत्नकरण्डश्रावकाचार
जिणिंदवायरण = जैनेन्द्र व्याकरण
पत्तकेसरी = पात्रकेसरी
जोगसार = योगसार
सुद = श्रुत
अप्पाणुसासण = आत्मानुशासन
पमाणपरिक्खा = प्रमाणपरीक्षा
विज्जाणंदमहोदअ = विद्यानंदमहोदय
तच्चत्थसलोगवत्तिय = तत्वार्थश्लोकवार्तिक
बहिरप्प = बहिरात्मा
णिदिट्ठ = निर्दिष्ट
गुणहर = गुणधर
जल = जल
लिहिद = लिखित
पवयणसार = प्रवचनसार
बारसाणुवेक्खा = बारह अनुप्रेक्षा
चुण्णिसुत्त = चूर्णिसूत्र
उमासामि = उमास्वामी
कत्तिकेय = कार्तिकेय
थुदिविज्जा = स्तुतिविद्या
सिद्धिपियथोत्त = सिद्धिप्रिय स्तोत्र
अकलंकदेव = अकलंकदेव
णायविणिच्छय = न्यायविनिश्चय
गंथसुद = ग्रन्थसूत्र
जिणसेण = जिनसेन
उत्तरपुराण = उत्तरपुराण
पत्तपरिक्खा = पत्रपरीक्षा
सिरिपुर = सिरिपुर
अट्ठसहस्सी = अष्टसहस्त्री

अंतरप्पा = अंतरात्मा
सक्खिय = साक्षात्
कसायपाहुड = कषायपाहुड़
विमलभूद = निर्मल हुए
छक्खंडागम = षट्खंडागम
बट्टकेर = वट्टकेर
देवागम = देवागम
सयंभूथोत्त = स्वयंभूस्तोत्र
सव्वट्ठसिद्धि = सर्वार्थसिद्धि
पुज्जपाद = पूज्यपाद
अट्ठसदी = अष्टशती
वीरसेण = वीरसेण
आदिपुराण = आदिपुराण
जिणदत्तवरिय = जिनदत्तचरित्र
जुत्तियणुसासणलंयार = युक्त्यनुशासनअलंकार
पुरिसत्थ-सिद्धिउवाय = पुरुषार्थसिद्धियुपाय
पंचत्थिकायटीगा = पंचास्तिकायटीका
जीवकंड = जीवकाण्ड
दव्वसुद = द्रव्यश्रुत
रयणत्तय = रत्नत्रय
गोम्मटसार = गोम्मटसार
कम्मकंड = कर्मकाण्ड
खओवसामिय = क्षयोपशम
जुत्त = युक्त
अमियचंदसूरि = अमृतचंद्रसूरि
पवयणसारटीगा = प्रववनसारटीका
णेमिचंदसिद्धंतचक्कवट्टि = नेमिचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्ती
तिलोयसार = त्रिलोकसार
णाणाणुसारि = ज्ञान के अनुसार
मुणी = मुनि
तच्चत्थसार = तत्त्वार्थसार
समयसारटीगा = समयसारटीका
लद्धिसार = लब्धिसार
भावसुदं = भावश्रुत

टीका गाथा-3
अभव = भव से रहित
परमत्थ = परमार्थ
कम्म = कर्म
पावइ = प्राप्त होना
वीयराय = वीतराग
विणास = विनाश
परभव = परभव
पुव्वुत्त = पूर्वोक्त
तस्स = उसका
अवस्सं = अवश्य
सामग्गि = सम्मग्री
पयार = प्रकार
भवकारणभूद = संसार के कारण भूत
रहिद = रहित

टीका गाथा-4
णिरय = नारक
परदव्व = परद्रव्य
विब्भम = विभ्रम
गोयर = गोचर
अभाव = अभाव
विणय = विनय
गई = गति
भिण्ण = भिन्न
अवभासण = अवभासन
अब्भास = अभ्यास
भावत्थ = भावार्थ
अप्पहिद = आत्महित
पोग्गल = पुद्गल
अदिंदियं = अतीन्द्रिय
व्युत्थित = जागृत
णिरंतरं = निरन्तर
भावणा = भावना
देह = देह (शरीर)
अणिद्धेसं = अनिर्दिष्ट
अतीन्द्रिय = अतीन्द्रिय
पमाद = प्रमाद

टीका गाथा-5
भावो = भाव
सारो = सार
संपहि = वर्तमान
दुक्खसुह = दुख, सुख
दोस = द्वेष
समाहिमरण = समाधिमरण
लोए = लोक
असंखेज्ज = असंख्यात
पल्ल = पल्य
पमाण = प्रमाण
महव्वय = महाव्रत
उदय = उभय (दोनों)
अर्यते = अर्थात्
कधंमूदं = किभ प्रकार
णिजं = अपना
विसिट्ठं = विशिष्ट
उवलद्ध = उपलब्ध
सद्ध = शब्द
संजोग = संयोग
फल = फल
उवलद्ध = उपलब्धि
अणंताणंत = अवंतानंत
दीव = द्वीप
सायर = सागर
विण्णाण = विज्ञान
परिपालण = परिपालन
णए = नय
परिच्छिध = जानना
अगजोग्गं = अयोग्य
पर = पराया
परुवणा = प्ररुपणा
पढमाणुओग = प्रथमानुयोग
भमण = भ्रमण
विओग = वियोग
संवेग = संवेग
करणाणुओग = करणायुयोग
अवट्ठाण = अवस्थान
समुद्ध = समुद्र
सूई = सूची
चरणाणुओग = चरणाणुयोग
णिज्जर = निर्जरा
वत्थु = वस्तु
गुण = गुण
आहेय = अहेय
तक्कालिय = तात्कालिक
सम्मादिट्ठी = सम्यदृष्टि
सील = स्वभाव
संबंध = संबंध
णेह = स्नेह
वेरग्ग = वैराग्य
धम्म = धर्म
सुद्धत = शुद्धपना
वित्थार = विस्तार
घणंगुल = घनांगुल
अणुव्वय = अणुव्रत
दव्वाणुओग = द्रव्यानुयोग
रमणं = रमण करना
पर्याय = पर्याय
गहणजोग्गं = ग्रहण करने योग्य
तिक्काल = त्रैकालिक
पयार = प्रकार

टीका गाथा-6
जिणउत्तं = जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहा
आहलाद = आनन्द
गुत्त = गुप्त
णिय = निज
ववहार = व्यवहार
जारे = योगी
णिवियप्प = र्णिविकल्प
उवओग = उपयोग
विच्छय = निश्चय
संवुड = समृद्ध
समाहि = समाधि
सादु = साधु

जाण = जानो
विदण्हू = जानने वाला
गुत्ति = गुप्ति
आत्मा = आत्मा
स्थित = स्थित
विसयमूद = विसयमूत
चखओवसार्मय = क्षयोपशम
परिहरण = परिहार
अप्पभावणा = आत्माभावना
अंतोमुहुत्तं = अंतर्मुहूर्त
उष्पाद = उत्पन्न होना
अनुष्ठान = अनुष्ठान
परमानन्द = परम आनन्द
परिणदि = परिणति
खय = क्षय
अस्सिद = आश्रित
अप्पपदीदि = आत्मप्रतीति
केवलणाण = केवलज्ञान
परिचत्त = छूटना
निष्ठ = निष्ठ
योग = निर्विकल्प धर्मध्यान शुक्लध्यान
वमिय = वमन करके
वद = व्रत
अप्पणुभवण = आत्म अनुभवर
परमजोदि = परम ज्योति
वहिः = बाहर
उवसम = उपशम
अनुववत्ति = उत्पत्ति
अप्परुइ = आत्मरुचि
थिरत्ता = स्थिरता
पयास = प्रकाश
अणुभागकंडय = अनुभागकाण्डक
विरोध = विरोध
अप्पमत्त = अप्रमत्त
विसोहि = विशुद्धि
विसेस = विशेष
गुणट्ठाण = गुणस्थान
ट्ठिदिकंडय = स्थितिकाण्डक

टीका गाथा-7

मिच्छाइट्ठी = मिथ्यादृष्टि
गेण्हि = ग्रहण करना
लक्खण = लक्षण
बहु = बहुत
परगिह = दूसरे का घर
आमंतण = आमंत्रण
लवण = नमक
भिक्खं = भिक्षा
आयारसुत्त = आचार सूत्र
सग = अपनी
मिरिच = मिर्च
दत्त = दी जाती है
एसणसमिदि = एषणासामिति
इच्छिद = इच्छा अनुसार
समण्णिद = सहित
चडपड = चटपटा
सीयल = शीतल
जण = जन (मनुष्य)
सरसि = सदृश
धण = धन
परोप्पर = परस्पर
चित्त = चित्र
धारग = धारण करने वाला
विराहणा = विराधना
विंजण = व्यंजन
पेय = पेय
आकस्सण = आकर्षण
कड = चटाई
फास = स्पर्शन
दासदासी = दासदासी
आलाव = आलाप
उवगरण = उपकरण
कीड़ा = खेल
समणोचिद = समणोचित्त
मिट्ठ = मिष्ठ (मीठा)
बहुमुल्ल = बहुमूल्य
कारणभूद = उत्पन्न करने वाला
इदिंयरोह = इन्द्रियनिरोध
णिग्गंठ = र्निग्रन्थ
दूरसंचार = दूर तक संचार करने वाले
पओग = प्रयोग
बद्ध = बंधी हुई
पाव = पाप
अण्ण = अन्न
असंजद = असंयत
सग = अपना
अपरिग्गह = अपरिग्रह
गिहत्थ = गृहस्थ
सद्द = शब्द
मुणिभेस = मुनिभेष
अंजुलि = अंजुलि
अणुमोदण = अनुमोदन

टीका गाथा-8

अइ = अति
महंत = महंत
अग्ग = अगले
विओग = वियोग
धणिय = धनवान्
सरिस = सदृश
चउग्गइ = चतुर्गति
अणुहवण = अनुभवन
पदत्त = प्रदत्त
इस्सर = ऐश्वर्य
भवभमण = भवभ्रमण
परूवण = प्ररुपण
महा= महान्
पद = पद
उवलद्धिं = उपलब्धि
सेट्ठि = श्रेष्ठी
उक्कट्ठ = उत्कृष्ट
संजोग = संयोग

टीका गाथा-9
सव्व = सर्व
अणंतरेण = बाद
विहि = विधि
गुहा = गुफा
खेत्त = क्षेत्र
रस = रस
रत्ती = रात्रि
कंदप्प = कंदर्प
वासर = दिन
परिच्चागी = परित्यागी
कट्ठ = कष्ट
परिचय = परिचय
पव्वद = पर्वत
मोणी = मौन धारण करने वाला
दिणं = दिन
वित्तिपरिसंखा = वृत्ति परिसंख्यान
एयंत = एकान्त
दूर = दूर
जल्लमल्ल = जल्ल मल्ल
लित्त = लिप्त
गिम्ह = ग्रीष्म
वरिसायाल = वर्षाकाल
कम = क्रम
लोगिग = लौकिक
आव्वेद = आर्युवेद
कुसलदा = कुशलता
समूह = समूह
णिम्माण = निर्माण
इच्छिद = इच्छित
जिणसुत्त = जिनसूत्र
तेक्कालिय = त्रैकालिक
गुरुसेवा = गुरुसेवा
भावत्थ = भावार्थ
सरीर = शरीर
सीदकाल = शीतकाल
रुक्खमूल = वृक्षमूल
दिक्खा = दीक्षा
संमोहण = सम्मोहन
गिह = ग्रह
भास = भाषा
विस्सास = विश्वास
वात्थुकला = वास्तुकला
पायच्छित = प्रायश्चित
सद्दहण = श्रद्धान
उवादेयभूदं = उपादेयभूत
अणुराग = अनुराग
आदावण = आतापन
बाहिर = बाहरी
अणेयविह = अनेक प्रकार
पंचकल्लाण = पंचकल्याणक
जोइसिय = ज्योतिष
वावार = व्यापार
परिण्णाण = परिज्ञान
पत्त = पात्र
पवीण = प्रवीण (निपुण)
तवोकम्भ = तपकर्म
पदत्थ = पदार्थ
तक्कालिय = तात्कालिक
मणसा = मन के द्वारा
तव = तप
देस = स्थान
जोणिट्ठाण = योरिस्थान
पदिट्ठा = प्रतिष्ठा
पाणायाम = प्राणायाम
पबंधण = प्रबंधन
महाजण = महाजन
जिणमंदिर = जिनमंदिर
गुरुआणा = गुरुआज्ञा
जीवण = जीवन
हेयोवादेय = हेय-उपादेय
सत्थब्भास = शास्त्राभ्यास
सव्वकिरिया = समस्तक्रिया

टीका गाथा-10
णिच्चेल = निर्वस्त्र
विवरीद = विपरीत
सक्खियं = साक्षात्
इंदियसयंम = इन्द्रियसंयम
मुच्छा = मूर्च्छा
अरिहंत मुद्दा = अरिहंत मुद्रा
पाणसंयम = प्राणसंयम
पडधरा = वस्त्र धारण करने वाले
छहकाय = छहकाय
विसय = विषय
आसा = आशा
अतीद = रहित

टीका गाथा-11
कप्पवासिय = कल्पवासी
सोहम्म = सौधर्म
भवणवासिय = भवनवासी
पमुह = प्रमुख
चक्कवट्टि = चक्रवर्ती
मणुसा = मनुष्य
वदणीअ = वंदनीय
भावलिंग = भावलिंग

टीका गाथा-12
सारीरिय = शारीरिक
पत्त = प्राप्त हुए
वंछा = इच्छा
अज्झप्प = अध्यात्म
माणसिय = मानसिक
अब्भास = अभ्यास
णिरोह = निरोध
सुद्धप्प = शुद्धात्मा
वीरियंतराय = वीर्यान्तराय
रुइ = रुचि
क्षुहा = क्षुधा
खओवसम = क्षयोपशम
बड्ढमाण = वर्धमान
तिसा = तृषा
पुव्विय = पूर्वक
विण्णाण = विज्ञान
वंदण = वंदना
णमोत्थु = नमोऽस्तु

टीका गाथा-13
सावय = श्रावक
इच्छाकार जोग्ग = इच्छाकार के योग्य
माहप्प = माहात्म्य

टीका गाथा-14
सच्छंद = स्वच्छन्द
गिहकम्म = गृहकर्म
पज्जंत = पर्यन्त
आयरण = आचरण
परिच्चाग = परित्याग
असंखेज्ज = असंख्यात
पडिमा = प्रतिमा
चुओ = च्युत
पंचसूणा = पंचसूना
महड्डियदेव = महर्धिक देव
अप्पभव = थोड़े भव

टीका गाथ-15
धम्माइं = धर्मों को
अणुव्वय = अणुव्रत
णिरवसेस = सम्पूर्ण शेष
दिगवद = दिग्व्रत
अप्पा = आत्मा
देसवद = देशव्रत
संसारत्थ = संसारी
अणत्थदंड = अनर्थ दंड
विरदि = विरति
झाण = ध्यान
सामाइय = सामायिक
परमजोदि = परमज्योति
पोसहोववास = प्रोबधोपवास
सरुव = स्वरूप
अतिहिदाण = अतिथिदान
भरिय = भरे हुए
किरिया = क्रिया
अप्पभावणा = आत्मा भावना

टीका गाथा-16
परमट्ठ = परमात्म
अणुहवण = अनुभवन
अप्पमत्त = अप्रमत्त
भावत्थ = भावार्थ
वद = व्रत
णिप्फल = निष्फल
झाणकाल = ध्यानकाल
आह = कहना
णियम = नियम
सण्णिद = संज्ञा
गिहत्थ = गृहस्थ
सहलत्त = सफल
चारित्त = चारित्र
एयंत = एकान्त
गुत्ति = गुप्ति
सद्धाभावणा = श्रद्धाभावना
जुत्त = ठीक
मंतव्व = मानना चाहिए
समिदि = समिति
णाणज्झाण = ज्ञानध्यान
संजमासंजम = सयंमासंयमी
कज्ज = कार्य
पत्ती = प्राप्ति

टीका गाथा-17
अण्णट्ठाण = अन्य स्थान
अण्णपत्त = अन्य पात्र
भोमण = भोजन

टीका गाथा-18
पसूदि = प्रसूति
संलीण = लीन हुआ
सत्थ = शास्त्र
समए = समय
अस्सिद = आश्रित
उवगार = उपकार
समत्थ = समर्थ
उववण्ण = उत्पन्न
पवुत्ती = प्रवृत्ति
जलसुद्धि = जलशुद्धि
पसंग = प्रसंग
बाल = बालक
मग्ग = मार्ग
मयरपिच्छि = मयूर पिच्छिका
सोचोवयरणं = शौच उपकरण
धोवण = धोना
णिव्वियार = निर्विकार
उवयरण = उपकरण
संतुट्ठो = संतुष्ट
रक्खण = रखना
णिप्परिगह = निष्परिग्रह
संकार = संस्कार
अस्सिय = आक्षय लेकर
मलमुत्त = मलमूत्र
कमण्डलु = कमण्डलु
भत्तपाण = भक्तपान
विणास = विनाश
बहुअं = बहुत
साहण = साधन
परिच्चाग = परित्याग
सुत्ताणुसार = सूत्रानुसार
तदियं = तृतीय
गुणयरा = गुणकारी
बुड्ढी = वृद्धि

टीका गाथा-19
जिणिंददेसणा = जिनेन्द्र भगवान की देशना
अंतरप्प = अंतरात्मा
पच्चक्खाणावरण=प्रत्याख्यानावरण
णिकट्ठो = निकृष्ट
अणंताणुबधिं = अनंतानुबंधी
कसाय = कषायं
णिरायार = निराकार
अपच्चक्खावावरण=अप्रत्याख्यानावरण
चउक्काण = चतुष्क
चरिअ = चरित्र
बाहिर = बाहिर
जादरूव = जातरूप
धण = धन

रजद = चाँदी
अणुववत्ती = अनुत्पत्ति
परोप्पर = परस्पर
भूमि = भूमि
अण्णपाण = अन्न, पान
अवट्ठाण = अवस्थान
सहावट्ठाण = सहावस्थान
दास = दास
संजलण = संज्वलन
विरोह = विरोध
सुवण्ण = सुवर्ण
उदय = उदय

टीका गाथा-20

तिव्व = तीव्र
असुह = अशुभ
अकह = बिना कहे
णिवेदण = निवेदन
संवेद = संवेदन
सामण्णेण = सामान्य रूप से
मंद = मंद
णिरोह = निरोध
पणीद = प्रणीत
परिणदी = परिणति
गोण = गौण रूप
उदय = उदय
असेस = समस्त
उवदिस = उपदेश
मुक्ख = मुख्य
तच्चणाणी = तत्त्वज्ञानी
पमत्तापमत्त = प्रमत-अप्रमत्त
सुहोवओगी = शुभोपयोगी
णमोत्थु = नमोऽस्तु
सुद्धोवजोगी = शुद्धोपयोगी
गुणसेढि = गुणश्रेणी

टीका गाथा-21

फुड़ीकरण = स्पष्टीकरण
धादुपत्त = धातुपात्र
पुव्वं = पहले
उद्दिट्ठ-चाग = उद्दिष्टत्याग
पुव्वावार = पूर्वापर
तेणेत्थ = इसलिए
विरोह = विरोध

परिशिष्ट-2

सूत्र-प्राभृत (2)

(महाकवि आचार्य श्री ज्ञानसागरजी कृत हिन्दी पद्यानुवाद)

जिन भाषित गणधर विरचित सूत्र अर्थ को जो सहसा।
समझ सोचकर मोक्षमार्ग को साधे साधु वही सुयशा॥1॥

आम्नाय विच्छेद रूप से आये हुये सूत्र जी का।
ले शब्दार्थ मोक्ष पद पाने, जग में वही भव्य नीका॥2॥

सूत्र सहित सूची होने से, नहीं खोने पाती है।
सूत्र रहित तो देखो भाई क्या न लुप्त हो जाती है॥3॥

सूत्रानुसार चलने वाला, आनायास सुख पाता है।
वरना भव बंधन में पड़कर नाना कष्ट उठाता है॥4॥

जो कि जिनोक्त सूत्र से, जीवा-जीवादिक तत्त्व ज्ञाता।
हो वह है आदेय बुद्धि धर, सम्यग्दृष्टि कहा जाता॥5॥

है व्यवहार और परमार्थ प्रणीति सूत्र जिनोदित में।
उसे जानने वाला योगी, सुख पावे दुख तुरत वमे॥6॥

जिन शासन में सवस्त्र को मुनि, कहने वाला विमूढ है।
मुनि अपरिग्रह वस्त्र परिग्रह के भेदों में निरूढ है॥7॥

जिनमत विहीन हरिहर सा भी, होकर मुक्ति नहीं पावे।
तप कर सुरपद को पावे फिर भी वह भव वन में आवे॥8॥

घोर तप करे सहे परीषह त्रिदशाधिप भी बन जावे।
उत्सूत्री हो पाप कमावे, मोहवान वह कहलावे॥9॥

पाणि-पात्र निश्चेल भाव को मोक्ष मार्ग बतलाया है।
जिनवर जी ने शेष सभी उन्मार्ग अहो यों गाया है॥10॥

जो आरंभ परिग्रह विरहित, हो संयम संयुक्त सही।
मनुजासुर सुरसंघ द्वारा वंदनीय जग में वही ही॥11॥

नाना शक्ति समेत परीषह, सहकर कर्म विनाश करें।
ऐसे परम दिगम्बर मुनियों के आगे हम शीष धरें॥12॥

हाँ जो सम्यग्दर्शन बोध व्रत युत चले खण्डधारी।
वह है इच्छाकार योग्य ऐसी जिनमत की बलिहारी॥13॥

जिन सूत्रानुसार आरम्भादि रहित देशव्रत धर हो।
इच्छाकारार्थ विचारक जो परलोक सुखद उसे कहो॥14॥

स्वरूप की रुचि इच्छा जिसके बिना व्रतादि व्यर्थ कहे।
काय क्लेश होने से चेतन संसारस्थ रहे॥15॥

अतः मोक्ष का इच्छुक हो वह मन वच तन एकाग्र करे।
आत्म तत्त्व पर लावे श्रद्धा, वरना कैसे कर्म हरे॥16॥

साधु वही जिस पास बालमित नाभी ग्रन्थ नहीं पावे।
एक जगह कर में भोजन जो श्रावक देवे सो खावे॥17॥

साधु नाम तो यथा जात का जो कि अकिंचन भाव रखे।
यदि तिल तुषा जितना भी धन ले तो निगोद के दुःख चखे॥18॥

थोड़ा सा भी रखे परिग्रह, तो फिर कैसे साधु बना।
जहाँ परिग्रह वहाँ गेहिता अपरिग्रह में साधुपना॥19॥

महाव्रती गुप्ति त्रयधारी लिङ्ग मुक्ति का भागी हो।
मेरा मन उसके चरणों में नमोऽस्तु का अनुरागी हो॥20॥

मितभाषी वा मौन युक्त से भिक्षा भाजन में लेवे।
क्षुल्लक का महा लिङ्ग दूसरा पाप को न होने देवे॥21॥

एकाशन करना एक पटावृत भी रहना सतत ही।
तीजा यह औरत लोगों का लिङ्ग कहा है और नहीं॥22॥

अहो दिगम्बरपन ही माना गया मुक्ति का मार्ग सही।
तीर्थङ्कर भी वस्त्र सहित जब तक तब तक हो मुक्त नहीं॥23॥

जिनकी योनि नाभि कुच कुक्षिस्थल में जन्तूत्पत्ति यतः।
महिलावों को न दिगम्बरता इसीलिये हो मुक्ति कुतः॥24॥

हाँ निष्पाप रूप होकर शिवपथ सही चलाती है।
जो महिला श्रद्धायुत आत्मोचित चारित्र पालती है॥25॥

मासिक वृत्ति चित्त कोमलता ढीलापन तनु में जिसके।
ताकि ध्यान नहीं निःशङ्क यतः शिव सङ्गति हो उनके॥26॥

थोड़ी सी थोड़ी आवश्यकता को करते जाते हैं
यों सन्तोषितया निरीह जो वे सब दुःख खपाते हैं॥27॥

परिशिष्ट-3

सूत्रपाहुड (गाथाओं का मूल पाठ)

अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
सुत्तत्थमग्गणत्थं सवणा साहंति परमत्थं ॥1॥

सुत्तम्मि जं सुदिट्ठं आयरियपरंपरेण मग्गेण।
णाऊण दुविहसुत्तं वट्टइ सिवमग्ग जो भव्वो ॥2॥

सुत्तं हि जाणमाणो भवस्स भवणासणं च सो कुणदि।
सूई जहा असुत्ता णासदि सुत्तेण तहा णोवि ॥3॥

पुरिसो वि जो ससुत्तो ण विणासइ सो गओ वि संसारे।
सच्चेयणपच्चक्खं णासदि तं सो अदिस्समाणो वि ॥4॥

सुत्तत्थं जिणभणियं जीवाजीवादि-बहुविहं अत्थं।
हेयाहेयं च तहा जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी ॥5॥

जं सुत्तं जिणउत्तं ववहारो तह य जाण परमत्थो।
तं जाणिऊण जोई लहइ सुहं खवइ मलपुंजं ॥6॥

सुत्तत्थपयविणट्ठो मिच्छादिट्ठी हु सो मुणेयव्वो।
खेडेवि ण कायव्वं पाणिप्पत्तं सचेलस्स ॥7॥

हरिहरतुल्लो वि णरो सग्गं गच्छेइ एइ भवकोडी।
तह वि ण पावइ सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो ॥8॥

उक्किकट्ठसीहचरियं बहुपरियम्मो य गरुयभारो य।
जो विहरइ सच्छंदं पावं गच्छदि होदि मिच्छत्तं ॥9॥

णिच्चेलपाणिपत्तं उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं।
एक्को हि मोक्खमग्गो सेसा य अमग्गया सव्वे ॥10॥

जो संजमेसु सहिओ आरंभपरिग्गहेसु विरओ वि।
सो होइ वंदणीओ ससुरासुरमाणुसे लोए ॥11॥

जे बावीसपरीसह सहंति सत्तीसएहिं संजुत्ता।
ते होंति वंदणीया कम्मक्खयणिज्जरा साहू ॥12॥

अवसेसा जे लिंगी दंसणणाणेण सम्मसंजुत्ता।
चेलेण य परिग्गहिया ते भणिया इच्छणिज्जा य ॥13॥

इच्छायारमहत्थं सुत्तठिओ जो हु छंडए कम्मं।
ठाणे ठिय सम्मत्तो परलोयसुहंकरो होदि ॥14॥

अह पुण अप्पा णिच्छदि धम्माइं करेइ णिरवसेसाइं।
तह वि ण पावइ सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो ॥15॥

एएण कारणेण य तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण।
जेण य लहेह मोक्खं तं जाणिज्जइ पयत्तेण ॥16॥

बालग्गकोडिमित्तं परिगहगहणं ण होइ साहूणं।
भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णण्णं इक्कठाणम्मि ॥17॥

जहजायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गिण्हदि हत्थेसु।
जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोदं ॥18॥

जस्स परिग्गहगहणं अप्पं बहुयं च हवइ लिंगस्स।
सो गरहिउ जिणवयणे परिगहरहिओ णिरायारो ॥19॥

पंचमहव्वयजुत्तो तिहिं गुत्तिहिं जो स संजदो होई।
णिग्गंथमोक्खमग्गो सो होदि हु वंदणिज्जो य ॥20॥

दुइयं च उत्तलिंगं उक्किट्ठं अवरसावयाणं च।
भिक्खं भमेइ पत्तो समिदीभासेण मोणेण ॥21॥

लिंगं इत्थीणं हवदि भुंजइ पिंडं सुएयकालम्मि।
अज्जिय वि एकवत्था वत्थावरणेण भुंजेइ ॥22॥

णवि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ॥23॥

लिंगम्मि य इत्थीणं थणंतरे णाहिकक्खदेसेसु।
भणिओ सुहुमो काओ तासिं कह होइ पव्वज्जा ॥24॥

जइ दंसणेण सुद्धा उत्ता मग्गेण सा वि संजुत्ता।
घोरं चरिय चरित्तं इत्थीसु ण पव्वया भणिया ॥25॥

चित्तासोहि ण तेसिं ढिल्लं भावं तहा सहावेण।
विज्जदि मासा तेसिं इत्थीसु ण संकया झाणं ॥26॥

गाहेण अप्पगाहा समुद्दसलिले सचेलअत्थेण।
इच्छा जाहुँ णियत्ता ताहुँ णियत्ताइं सव्वदुक्खाइं ॥27॥

परिशिष्ट-4

सुत्तप्राभृतः

नन्दिनी टीका में प्रयुक्त ग्रन्थों के सन्दर्भ

सन्दर्भ	ग्रन्थ	टीका नं.
सुत्तं गणहर	भगवती आराधना-33	1
जो पस्सदि	समयसार-17	1
यद्भावे	समाधितन्त्र-24	4
आत्मानुष्ठान	इष्टोपदेश-47	6
उभयनय	समयसार कलश-4	6
विषयाशा	रत्नकरण्डश्रावकाचार-10	11
परीषहाद्यविज्ञाना	इष्टोपदेश-24	12
अदेहणं भावणा	प्रतिक्रमण पाठ	18
असुभोवयोग रहिदा	प्रवचनसार-3/60	20
परायत्तात्	आत्मानुशासन-66	27